हिन्दी आर्गेनन

अनुवादक :—

प्रोफ़ेसर—भोलानाथ टण्डन ।

बी०, ए०, एम०, एस०।

हिन्दी आर्गैनन्

महामति डाक्टर सैमुयल हैनीमैन
लिखित आर्गैनन्‌का हिन्दी-
भाषानुवाद।

अनुवादक
तथा
प्रकाशक—

डा० भोलानाथ टन्डन

बी० एच० एम० एस०
(स्वर्णपदक प्राप्त)

प्रोफ़ेसर—
यू, एच, मेडिकल कालेज।

प्रथम संस्करण ११००] सम्वत १९८० [मूल्य १।।।)

प्रकाशक—

भोलानाथ टंडन,

यूनाइटेड होमियोपैथिक फ़ार्मेसी,

नं० ३० बांसतल्ला गली, कलकत्ता।

28.5.25

मुद्रक—

विश्वम्भर नाथ खन्ना।

प्रोप्राईटर—"खन्ना प्रेस"

८६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

भूमिका।

हमारी मातृ-भाषा—राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी अङ्ग पुष्टिके लिये, तथा उसे सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेके लिये हमारे देशके बड़े-बड़े विद्वान्, तथा धुरन्धर लेखकगण अपने अर्जित अनुभव और ज्ञानको सरल सुन्दर भाषामें व्यक्त कर पुस्तकोंके लिखनेमें तन-मनसे लगे हुए हैं। साहित्य शिल्पी प्रकाशकगण उनकी पुस्तकें प्रकाशित कर प्रकाशन कलामें अपनी अपनी प्रतिभा दिखाते हुए अपनी तथा लेखक महाशयोंकी कीर्ति अमिट और स्थायी कर रहे हैं; साथ ही साहित्य भाण्डारकी यथोचित रीतिसे पूर्ति कर रहे हैं। अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलनको स्थापित हुए आज दस-बारह वर्ष हुए हैं। इन्हीं दस-बारह वर्षों के अन्दर हिन्दी-साहित्यकी यथेष्ट उन्नति हुई है तथा सर्वगुण आगरी-नागरी लिपिका यथेष्ट प्रचार भी हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु अब भी एक नहीं, कितनेही अत्यन्त आवश्यक विषय बिल्कुल अछूते और कोरे पड़े हैं और यह बड़ेही खेदकी बात है, कि हमारे स्वदेशवासी विद्वान् हिन्दी लेखकोंने उन विषयोंकी ओर ध्यान ही नहीं दिया है और यदि ध्यान भी दिया है, तो बहुत ही कम।

हमारे कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि हम विद्वान् लेखकों,

अनुवादकों तथा प्रकाशकोंकी त्रुटि अथवा उनका दोष बतायें ; बल्कि हमारा उद्देश्य यह है, कि यदि किसी कारणवश उन्होंने पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र, रसायन शास्त्र, राज-नीति-शास्त्र, आदि विषयोंकी ओर ध्यान नहीं दिया है और यदि ध्यान दिया भी तो जिन कारणोंसे उनका कार्य सिद्ध नहीं हुआ है ; उन कारणोंको व उन रुकावटोंको दूर करना, प्रत्येक भारतवासी, खासकर प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषीका कर्त्तव्य है। प्रत्येक मनुष्यका यह जन्म सिद्ध अधिकार है, कि वह जिस समाजमें रहता है उस समाजके शरीरमें यदि उसे किसी प्रकारकी कमी-किसी प्रकारका अभाव मालूम पड़े, तो उसे वह सर्व साधारणकेसन्मुख उपस्थित करे और यथासम्भव उस कमीको दूर करनेकी चेष्टा करे। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर और विद्वान् लेखकोंको इस ओर अग्रसर होते न देखकर हमने स्वयं इस ओर अग्रसर होनेका साहस किया।

प्रस्तुत पुस्तकमें हमारा अपना कुछ भी नहीं है। यह एक स्वानुभूति प्राप्त, संसारके मङ्गलाकांक्षी, परम मेधावी महापुरुषकी लिखी एक पुस्तकका हिन्दी भाषान्तर मात्र है। मूल पुस्तककार **महामति हैनिमैनने** यह ग्रन्थ जर्मन भाषामें लिखा था। उनके जीवनकालमें ही उनके इस नवाविष्कृत विज्ञान-तत्वके विरोधियोंकी संख्या अत्यन्त अधिक होनेपर भी इस ग्रन्थके पांच–छे संस्करण हो चुके थे। तबसे आजतक कितने ही संस्करण हो चुके हैं। ज्यों-ज्यों दिन बीतते चले

जाते हैं, त्यों-त्यों इस अमूल्य ग्रन्थ-रत्नका चिकित्सा-शास्त्रज्ञोंमें आदर बढ़ता जा रहा है। इस पुस्तकके विषयमें सुप्रसिद्ध होमियोपैथिक चिकित्सा-शास्त्रके ज्ञाता डाक्टर आर, सी०, नाग, महाशयने एक बार कहा था :—

"What is the Bible to a Christian, the Geeta to a Hindu, the Qura'n to a Mohammedan, so the Organan is to a Homœopath."

अर्थात् ईसाई जिस दृष्टिसे बाइबिल को देखते हैं, हिन्दूके लिये गीता जितते आदरकी वस्तु है और मुसलमानके लिये कुरानशरीफ़ जितनी श्रद्धाकी चीज़ है, उसी प्रकार आर्गेनन् एक होमियोपैथके (सदृश् चिकित्सा-विधानके माननेवाले) लिये मूल्यवान् है।"

डाक्टर नाग जैसे दिग्गज चिकित्सा-शास्त्रज्ञ जब इस पुस्तकके विषयमें ऐसा वाक्य कहते हैं, तब इसके ऊपर और कुछ कहना बाहुल्य मात्र है। इस पुस्तककी आवश्यकता, उपकारिता और उपयोगिता इसके पठन और मननसे ही मालूम हो सकती है! सुतरां इस पुस्तकके विषममें अधिक कुछ कहना अनावश्यक प्रतीत होता है।

मैं स्वयं हिन्दीका कोई लेखक नहीं हूं! भाषाका सम्यक् ज्ञान मुझमें नहीं है, तथापि इस कार्यको परम आवश्यक समझ मैंने इसका हिन्दी अनुवाद करनेका दुस्साहस किया है। यदि पुस्तकसे हमारे हिन्दी भाषा-भाषियोंका कुछ भी उपकार हुआ

और हमें पूर्ण आशा है, कि अवश्यही कुछ न कुछ लाभ होगा, तो हम इस चिकित्सा-प्रणालीकी अन्यान्य आवश्यक पुस्तकोंका हिन्दीमें भाषान्तर करके हिन्दी-भाषियोंकी सेवामें उपस्थित करेंगे।

हाँ, इस पुस्तकके पठन और मननके विषयमें एक बात कह देना हम आवश्यक और उचित समझते हैं, कि इस पुस्तकके अध्ययनसे कोई यह आशा न करे, कि वह एक बड़ा भारी होमियोपैथ बनजायेगा। जो सज्जन इस आशासे इस पुस्तकको पढ़ें, उनसे मैं अनुरोध करना चाहता हूं, कि वे इस वृथा आशाको पहलेही त्याग दें। साथही हम, यह भी कह देना चाहते हैं, कि इस ग्रन्थके अध्ययनके बिना होमियोपैथिक या सदृश-चिकित्सा-विधानका समस्त अध्ययन, मनन और ज्ञान अपूर्ण हीनही, निःसार भी है। होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली यदि मनुष्य शरीर है तो यह उसका प्राण है। वह अगर कोई जड़ वस्तु है, तोयह उसकी चेतना-शक्ति है। वह यदि एक बड़ी भारी इमारत है तो यह उसका आधार स्तम्भ है। इसका कारण यह है, कि महामति हैनिमैनने इस पुस्तकमें ओषधियोंके गुण, उनके लक्षण, उनका प्रयोग, रोगोंके लक्षण, रोगीको देखनेकी विधि, रोगीकी चिकित्सा करनेका सुगम, सरल और विषद मार्ग इत्यादि सभी आवश्यक बातोंपर बड़ी गम्भीरता पूर्वक विचार और निर्णय किया है। होमियोपैथिकके साथ तात्कालिक समग्र यूरोपमें प्रचलित एलोपैथिक

चिकित्सा-प्रणालीकी तुलनात्मक दृष्टिसे आलोचनाकी है और उनकी त्रुटियों, भ्रान्तियों आदिको प्रकट करते हुए होमियोपैथीकी उपकारिता बतायी है। तथा इस विज्ञानमें पारदर्शी होनेके कई साधन बड़ी ही उत्तम रीतिसे बताये हैं। होमियोपैथिकके सिवा और जितनी चिकित्सा प्रणालियां जैसे यूनानी आयुर्वेदिक इत्यादि हैं, उनमें प्रायः सभी एलोपैथीसे मिलती-जुलती हैं। इस लिये यदि ऐसा कहा जाये कि इस पुस्तकमें होमियोपैथिकके साथ एक प्रकारसे अन्य सभी चिकित्सा-पद्धतियोंकी तुलनात्मक दृष्टिसे आलोचनाकी गयी है, तो अत्युक्ति नहीं होगा।

अन्तमें हमें यू०, पत्र०, मेडिकलकालेजके प्रिन्सिपल श्रीयुक्त डाकृर सुरेन्द्र नाथ सेन और "भारतमित्र" के भूतपूर्व सहकारी सम्पादक श्रीयुक्त पण्डित कार्त्तिकेय चरण मुखोपाध्यायको हृदयसे धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते; क्योंकि इन दोनों सज्जनोंने इस पुस्तकके लिखनेमें हमें यथेष्ट सहायता दी है।

भोलानाथ टन्डन।



विषय सूंची ।

विषय — सूत्र संख्या

विषयमें कितनीही आवश्यक बातोंका अन्वेषण करके उन्होंने इस पुस्तकका पांचवां संस्करण निकाला। कहते हैं, अपनी जीवितावस्थामेंही उन्होंने आर्गेनन् का छठा संस्करण भी निकाला था, पर दुर्भाग्यवश सर्वसाधारणको वह संस्करण नहीं मिला। सन १८३८ ई० में उन्होंने 'पुराने रोग' नामकी एक पुस्तक प्रकाशित की।

हैनिमैन अपने जीवनकालमेंही होमियोपैथिक प्रणालीकी संसारमें इज़्ज़त होती देखते और भविष्यमें उसकी इज़्ज़त और भी अधिक होनेकी आशा रखते हुए सन् १८४३ ई० के जुलाई महीनेमें संसार छोड़कर चले गये।

यह कहना व्यर्थ है, कि उनके जीवन कालमें ही होमियोपैथिक प्रणालीकी विजय-पताका संसारके कोने-कोनेमें फहरा गयी थी। यूरोप और अमेरिका आदि महादेशोंके कितनेही विचक्षण चिकित्सकोंने उनका मार्गानुसरणकर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। आज संसारमें ऐसी कोई जगह नहीं जहां होमियोपैथीका प्रवेश न हुआ हो।

पांचवें संस्करणकी उपक्रमणिका

(महामति सैमुएल हैनिमैन लिखित)

प्राचीन प्रणालीके * अनुसार चिकित्सा करने वाले चिकित्सकगण जिस धारणाके वशवर्ती होकर रोग दूर करनेकी

* असदृश चिकित्सा विधान (Allopathy) इसको प्राचीन प्रणाली इसलिये कहते हैं क्योंकि यह प्राचीन समयसे व्यवहारमें है।

चेष्टा करते हैं, उसका तात्पर्य यही है कि वे प्राय: सदाही यह सोचते हैं, कि रक्ताधिक्य या किसी प्रकारके विदाही पदार्थ (जलाने वाली वस्तु) से रक्तमें मिश्रित होनेके कारण ही रोग उत्पन्न होते हैं। इसी धारणाके कारण वे कभी रक्त परिष्कृत करके, कभी अतिरिक्त रक्तको निकाल करके और कभी दस्त लाने वाली, वमन (क़य) करानेवाली, पेशाब करानेवाली, कफ (ज़ुकाम) निकालनेवाली या फोड़े उठाने-वाली दवाएँ देकरके रोग दूर करनेकी चेष्टा करते हैं। परन्तु वास्तवमें इस प्रणालीसे रोग समूल नष्ट नहीं होता, बल्कि इसका परिणाम यह होता है, कि रोगीके शरीरका प्रकृति-प्रदत्त सार पदार्थ नष्ट होता जाता है और साथही रोगीकी अवस्था उत्तरोत्तर और क्षीण होती जाती है। वे कई दवाएँ एकही साथ रोगीको सेवन करानेके लिये देते और यह ख़याल करते हैं, कि प्रत्येक औषधि पृथक-पृथक अपना काम करेगी; परन्तु वे यह नहीं समझते, कि उन दवाओंका असर शरीरपर कैसा भयंकर पड़ता है और क्रमशः उसका असर रोगीको किस प्रकार क्षीण करता जाता है। इधर वे दवाकी मात्रा और भी बढ़ाते जाते हैं उधर रोगीका रोग भीतर-ही-भीतर बढ़ता जाता है। इस प्रणालीसे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सक रोगीको सन्तुष्ट करनेके लिये विपरीत क्रियावाली ओषधियां देकर रोगीकी पीड़ाको दबा देते हैं, परन्तु पीछे रोगीको आरामके बदले और भी अधिक पीड़ा मालूम होने लगती है। किसी प्रकारके चर्मरोगको अर्थात्

शरीरके ऊपरी पर्देपर होने वाले रोगोंको वे लोग ऊपरी रोग समझते हैं। मानो भीतरी शरीरसे उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इसीलिये वे लोग चमड़ेके ऊपरही दवाएँ रगड़कर ऊपरका रोग दूर करनेकी चेष्टा करते हैं। ऊपरी रोगके दूर होनेकोही वे रोगको समूल विनष्ट हुआ समझते हैं। परन्तु वस्तुतः इसका परिणाम यह होता है, कि वह रोग शरीरके ऊपरी आवरणसे हटकर भीतरकी ओर चला जाता है और बाहरकी अपेक्षा भीतरके अधिक कोमल अङ्ग-प्रत्यङ्गोंपर एक या एकसे अधिक जगहोंपर आक्रमण करता है। अतः रोग पूर्वापेक्षा और भी बढ़ जाता है। फिर जब वे उस रोगको भीतरके उन अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे हटानेकी चेष्टा करते हैं, तब वह और भी अधिक दूरतक फैलता जाता है। इसके साथही साथ दवावोंका बुरा असर रोगको और भी बढ़ाता जाता है। जब ये लोग अपनी अभ्यस्त औषधियों या आज़मूदा दवाइयोंका कुछ भी फल होता नहीं देखते हैं और रोगको उत्तरोत्तर बढ़ता देखते हैं, तब मर्करी (पारा) के "Cholomel" या "Corrosive Sublimate" के भिन्न-भिन्न मिश्रणोंके द्वारा सर्वाङ्गीन परिवर्तन करना चाहते हैं।

बहुत ही पुरानी बीमारियोंमें, जिनमें निन्नानवे प्रति सैकड़ा रोगीकी मृत्यु निकट आ जाती है या जिनका आराम होना असम्भवसा होता है, उनमें ये पुरानी चिकित्सा-प्रणालीके चिकित्सकगण जो दवाएं देते हैं उनसे रोगके हटनेके बदले शरीरकी जीवनी-

शक्तिकाही अधिकाधिक ह्रास होता जाता है। इस काममें वे इतने अभ्यस्त हो गये हैं, कि इस परिणामको देखकर भी उनकी विवेक बुद्धिको तनिक भी दुःख नहीं होता है।

इस हानिकारक चिकित्साकी पुष्टिमें वे लोग केवल अपने पढ़े हुए ग्रन्थों या ग्रन्थकारोंकी दुहाईकी दलीलें पेश करते हैं। इस प्रकारकी चिकित्सा-प्रणालीके लिये-जिसका परिणाम सदा उलटा ही हुआ करता है, पर जिसका कुछ अर्थ ही नहीं है-भले ही वे अपने पढ़े हुए ग्रन्थों और ग्रन्थकारोंकी दुहाई देलें, पर एक समय ऐसा आवेगा, जब उनकी चिकित्साके बुरे परिणामही स्वयं चिल्ला-चिल्लाकर संसारको उनकी चिकित्साके विरुद्ध खड़ा कर देंगे। हां कुछ चिकित्सकोंने अपनी दी हुई दवाइयोंका अनिष्ट परिणाम होता देख, दुःसाध्य रोगोंमें भी दवा देना बन्द कर दिया है। इस अवस्थामें वे कोई दवा न देकर केवल केलेके अर्कके साथ, गुलाब जलका अर्क मिलाकर, रोगीको सेवनार्थ देते हैं। तात्पर्य्य यह, कि इस हालतमें वे कोई दवाही नहीं देते हैं; क्योंकि अब वे जानने लगे हैं, कि दवा नहीं देनेसे दवाकी अधिकतासे होनेवाली मृत्यु-संख्या घट जाती है *।

यह स्वेच्छाचारिता मूलक प्राचीन चिकत्सापद्धति, जो सैकड़ों-हज़ारों वर्षों से जीवन-मरणकी समस्या हल करनेका अधिकार प्राप्त करती आती है, जो कुचिकित्सा द्वारा होनेवाली मृत्यु-संख्यासे दसगुनी अधिक मृत्युका कारणस्वरूप होती

* जैसे मोतीझारा, चेचक इत्यादि रोगोंमें वे प्रायः औषधि नहीं देते

आती है और जो हज़ारों-लाखों स्त्री-पुरुषोंको तीखी और ज़हरीली दवाइयोंसे मूलव्याधिकी अपेक्षा भी अधिक दुर्दशाग्रस्त और दुर्बल बनाती आती है, मैंने उस प्राचीन चिकित्सा-पद्धतिके विपरीत जो नवीन पद्धति आविष्कृत की है उसके विषयमें कुछ कहनेके पहले मैं (Allopathic) असत्तम चिकित्साके विषयमें उपक्रमणिकामें अपना मत प्रगट करूँगा।

होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली सम्पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र है। इस प्रणालीके अनुसार चिन्ता या मनन करनेपर यही मालूम होगा, कि वास्तवमें कोई रोग किसी दूषित या जलनशील पदार्थके समावेशसे नहीं होता है। कोई भी रोग क्यों न हो, वह यही प्रगट करता है, कि किसी शक्ति विशेष द्वारा जीवनीशक्तिमें परिवर्तन उपस्थित हुआ है। होमियोपैथी यह बात जानती है, कि केवल चुनी हुई दवावोंके द्वाराही जीवनी शक्तिपर प्रतिक्रिया की जा सकती है। इसी प्रतिक्रिया द्वारा रोगके नाश होनेकी निश्चयता और शीघ्रता शरीरकी जीवनी शक्तिपर निर्भर करती है। इसीलिये होमियोपैथी रोगीको जीवनी-शक्तिको क्षीण करके चिकित्सा करनेको नहीं कहती है। किसी प्रकारकी पीड़ासे जीवनी-शक्तिका ह्रास होता है, इसीलिये होमियोपैथीके अनुसार पीड़ा उत्पादक औषधि नहीं दी जाती। इस मतानुसार सदा ऐसीही दवाएँ दी जाती हैं, जिनका असर स्वस्थ शरीरपर भी पड़ता है और जिनके गुणागुण और क्रियाकी पूरी परीक्षा की जा चुकी है। प्रत्येक रोगीको वैसी ही दवाएँ

दी जाती हैं, जो सदृश लक्षण उत्पन्न करती हैं। इसपर विशेषता यह कि वह औषधि भी इतनी अल्प मात्रामें दी जाती है, कि उससे किसी प्रकारकी पीड़ा या विषमता न हो और जीवनी शक्ति दुर्बल भी नहीं हो। इस चिकित्सा प्रणालीमें जीवनी-शक्ति क्षीण नहीं की जाती है, शरीरमें चीर-फाड़ भी नहीं किया जाता। रोगी निरोग होनेपर आपही सबल होने लगता है? स्थूल दृष्टिसे देखनेपर ज्ञात होता है, कि यह चिकित्सा प्रणाली बहुतही सहज और सरल है, परन्तु वास्तवमें यह अत्यन्त श्रमसाध्य और गम्भीर चिन्ता सापेक्ष है। इस चिकित्सा पद्धति द्वारा अल्प समयमें और विना किसी प्रकारकी क्षतिके रोग दूर हो जाता है।

इस प्रकार होमियोपैथी (सदृश चिकित्सा) एक सर्वाङ्गपूर्ण और सरल चिकित्सा प्रणाली है। इसकी नियमावली मर्यादित, निश्चित और अपरिवर्तनीय है। जिस शास्त्र या विज्ञानके आधारपर यह प्रणाली अवलम्बित है, उसका पूरा ज्ञान प्राप्त करके और भली भांति इसकी सत्यता जान करके (क्योंकि एक मात्र इसी प्रणालीसे रोग समूहका समूल विनाश होता है) इसका उपयोग करना चाहिये। और कभी किसी सदृश प्रणालीके चिकित्सकको प्राचीन असदृश प्रणालीके अनुसार (जिसके साथ होमियोपैथीका रात और दिनके समान भेद है) कार्य नहीं करना चाहिये। होमियोपैथिक चिकित्सकको कभी दूसरी प्रणालीका अवलम्बन नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे

होमियोपैथीका गौरव नष्ट होता है—उसकी नाक कट जाती है।

कोई-कोई चिकित्सक अपनेको होमियोपैथिक चिकित्सक बताकर भी कभी-कभी प्राचीन ऐलोपैथिक चिकित्साका अवलम्बन करनेको उद्यत होते हैं, वे वास्तवमें होमियोपैथिक प्रणालीका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं करसके हैं या आलस्य करते हैं अथवा रोगीकी आंखोंमें धूल झोंकना चाहते हैं या रोगीको आरोग्य करनेकी परवाह नहीं करते हैं। वे प्रत्येक रोगीके रोगके लक्षणोंकी ध्यानपूर्वक परीक्षा करके उसके सद्रश दवा ढूँढ़ निकालनेकी चेष्टा नहीं करते, रोगीकी परवाह नहीं करते, इसके लिये वे कदापि क्षम्य नहीं हो सकते हैं। वरन् वे अर्थ-लोलुप पिशाचकी तरह नीच उपायोंसे ऐसे काम करते हैं, जिनका फल यह होता है, कि जो रोगी इस चिकित्सा-पद्धतिसे आरोग्य हो सकते थे, उन्हें आरोग्य न कर ऐसी जगह भेज देते हैं, जहांसे आदमी फिर लौट कर नहीं आते। रोगीके सम्बन्धी तथा और लोग समझते हैं, और चिकित्सक भी अपने मनको यही कहकर सांत्वना देते हैं, कि यद्यपि बहुत तकलीफ़ हुई पर चिकित्सामें कोई त्रुटि नहीं की गयी।

आर्गेनन् ।

(१)

रोगीको फिरसे स्वस्थ अवस्थामें लौटा ले आना ही चिकित्सकका एक मात्र उद्देश्य है। इसे रोग-रहित करना कहते हैं।

(२)

जिस चिकित्साके द्वारा रोग बिना किसी प्रकारकी तकलीफ़के जल्दी-जल्दी और स्थायीरूपसे दूर होता है, रोग समूल और समस्त लक्षणों सहित शरीरसे अलग हो जाता है, औषधिके दोषसे रोगीको कोई हानि नहीं पहुंचती है, जिस चिकित्सा-शास्त्रकी प्रणालियां सरलतापूर्वक समझमें आती हैं और जिसपर सम्पूर्णरूपसे विश्वास और भरोसा किया जा सकता है, वही चिकित्सा-पद्धतिही आदर्श-चिकित्सा कही जा सकती है।

(३)

योग्य और विवेक-बुद्धि-सम्पन्न चिकित्सक होनेके लिये इन विषयोंपर यथोचित अधिकार करना चाहिये :—प्रत्येक रोगीके कौन-कौनसा विषय चिकित्साकी सीमाके भीतर है (अर्थात् रोग-निर्णय सम्बन्धी ज्ञान), प्रत्येक औषधि मनुष्य

शरीरपर कैसी क्रिया करती है (अर्थात् औषधिका क्रिया-सम्बन्धी ज्ञान), उक्त चिकित्सा प्रणालीके अनुसार परीक्षित रोगीके लिये औषधिका निर्वाचन विषयक ज्ञान, औषधि बनानेकी विधि और उनकी मात्रा निर्णय करनेका ज्ञान, रोगीको पुनः औषधि पिलानेका समय निश्चित करना, तथा रोगके हटनेके मार्गमें यदि कोई प्रतिवन्धक (रुकावट) * हो तो उसे दूर करनेकी व्यवस्था करना।

(४)

जिन कारणोंसे स्वाथ्य नष्ट होकर शरीरमें पीड़ा उत्पन्न हो सकती है, उन कारणोंके जानने और उन्हें दूर करनेमें जो चिकित्सक समर्थ हैं, वे ही स्वास्थ्यकी रक्षा करनेवाले हैं।

(५)

नयी बीमारियोंमें कुछ ऐसे लक्षण पाये जाते हैं, जिनसे यह मालूम होता है, कि इन्हींकी उत्तेजनाके कारण नयी बीमारीको उत्पत्ति होती है। नये रोगोंके इन उत्तेजक कारणोंका यदि चिकित्सकको समुचित ज्ञान हो जाये, तो उसे बड़ी सहायता मिलती है। ठीक इसी प्रकार पुरानी बीमारियोंकी परीक्षा और अनुसन्धान करनेसे उनके लक्षणोंके मूल कारणका भी पता लग जाता है, जिसे पुरानो बीमारियोंका बीज (या Miasm) कह सकते हैं। पुराने रोगोंकी चिकित्सा करनेके लिये इस मूल

---

* जैसे:—शराब पोने, रात जागनेकी आदतें या गीली ज़मीन पर सोना इत्यादि।

कारणका जानना * अत्यन्त आवश्यक है। रोगीकी परीक्षा करते समय रोगीकी मानसिक परिस्थिति, उसकी प्रकृति, उसके पेशे, उसके आचार-व्यवहार उसकी समाजिक और पारिवारिक परिस्थिति, उसकी उम्र और उसके जननेन्द्रियके सम्बन्धमें जानकारी रखना बहुत ज़रूरी है।

(६)

कोई भी निरपेक्ष मनुष्य—जिसने अपने अनुभव द्वारा ज्ञानेन्द्रियोंके परे जो कल्पनाएँ हैं, उनकी असारताको समझ लिया हो, विषयके भीतर उसका प्रवेश बहुत ही अच्छी तरह भले ही हो गया हो—रोगीके रोगकी परीक्षा करते समय रोगीके कुछ शारीरिक या मानसिक अवस्थान्तरके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जान सकता है। वह केवल अपने बाह्य इन्द्रियोंकी सहायतासे ही उस अवस्थान्तरको जान सकता है। रोगी अपनी तकलीफ़ोंका जो वर्णन करेगा, उसके पास रहनेवाले लोग रोगीके वेदनासूचक जो-जो लक्षण देखेंगे और चिकित्सक अपनी बाह्य इन्द्रियोंकी सहायतासे जो परिवर्त्तन मालूम कर सकेंगे, इन सबको मिलाकर रोगको पहचानना होगा। अर्थात् अनुभवयोग्य समस्त लक्षणोंकी समष्टि (या मिले हुए रूपको) कोही हम रोगका चित्र या प्रतिबिम्ब कह सकते हैं।

---

* हमारी समझमें सब प्रकारके पुराने रोगोंके मूल कारण तीन हैं :—Psora (सोरा), Sycosis (साइकोसिस्) Syphilis (सिफिलिस्)।

(७)

कोई भी बीमारी जिसका उत्तेजक या परिपोषक कारण स्वरूप कोई ऐसा बाहरी पदार्थ नहीं दिखाई देता हो, जिसके हटा देनेसे रोगका समूल नाश हो जाये (१) तो उस बीमारीमें हम थोड़ेसे पीड़ोत्पादक लक्षणोंके सिवाय और कुछ भी मालूम नहीं कर सकते हैं। यद्यपि यह बात सदा माननी पड़ती है, कि सभी रोगोंका कोई न कोई मूल कारण (Miasm) अवश्य है अथवा किसी आनुसंगिक कारणसे उस रोगकी जड़ मज़बूत हो रही है, तथापि जब रोगसे होनेवाले कष्टोंको समूल नाश करनेके लिये औषधिके प्रयोगकी आवश्यकता होती है, तब सिवा इन लक्षणोंके और किसी चीज़की सहायता नहीं मिल सकती। दृष्टि-शक्तिके परे जो **जीवनी-शक्ति** है, वह जब किसी रोग-शक्तिके द्वारा आक्रान्त होती है, तब उसकी पीड़ाएँ इन्द्रियग्राह्य **लक्षणोंके द्वारा** (२) प्रकट होती हैं। ये लक्षणही जीवनी-शक्तिकी आन्तरिक पीड़ाओंके बाह्य (या इन्द्रिय ग्राह्य) प्रतिविम्ब हैं। प्रधानतः ये ही लक्षण एक ओर हमें रोगका वास्तविक रूप दिखलाते हैं और दूसरी ओर उस रोगको दूर करनेके लिये किस

---

(१) जैसे :—यदि किसी दुर्गन्धिके कारण किसीके सिरमें पीड़ा होती है, तो उसे वहाँसे हटा कर पीड़ा दूर कर सकते हैं। (२) रोगीके रक्त, मूत्र, श्लेष्मा आदिकी परीक्षा करके हम रसायनगत या पदार्थगत सूक्ष्म परिवर्तन (Micros-

औषधिका प्रयोग करना चाहिये, यह भी बताते हैं। लक्षणोंकी सहायतासे ही हम अपनी-अपनी चिकित्सा प्रणालीके अनुसार औषधि चुन लेते हैं।

(८)

रोगके समग्र लक्षणोंके स्थायी रूपसे दूर हो जानेपर भी फिरसे स्वास्थ्य सम्पूर्ण रूपसे ठीक नहीं हो गया या रोग कहीं छिप कर शरीरके किसी कोनेमें अटका हुआ है ऐसा सिद्धान्त मनुष्यकी बुद्धिके परे है। ऐसी अवस्थामें किसी भी प्रकारसे रोगका अस्तित्व प्रमाणित नहीं हो सकता है। (१)

---

copic changes) देख सकते हैं। हम इन परिवर्त्तनोंको या उनमेंसे किसी एकको रोगका मूल कारण नहीं समझते हैं। उन्हें भी हम रोगके इन्द्रिय-ग्राह्य लक्षण ही समझते हैं। रोगके मूल कारण को जिसे हम (Miasm) कहते हैं—दृष्टिके अतीत एक शक्ति समझते हैं।

(१) होमियोपैथिक-चिकित्सा-प्रणालीके विरोधी कहते हैं, कि होमियोपैथिक चिकित्सासे रोगके लक्षण दूर हो जाते हैं, पर रोग भीतर-ही-भीतर रह जाता है। वे यह सुनकर बहुत आश्चर्य्य करेंगे, कि होमियोपैथिक चिकित्साके द्वारा जब रोगी पूर्णतः रोगमुक्त हो गया है, तब रसायन-विज्ञान या अनुवीक्षण यन्त्रद्वारा या उसको नब्ज़ देख कर किसी रोगके अस्तित्वका पता नहीं लगा है। इस बातकी सत्यता हाथों-हाथ दिखानेके लिये हम लोग रोगीकी रुग्णावस्थामें तथा रोगमुक्तावस्थामें उसके रक्त, मूत्र आदिकी परीक्षा उन्हींके द्वारा कराते हैं।

(९)

जो अदृश्य-शक्ति मनुष्यके शरीरमें रह कर उसे जीवित रखती है, उसी को जीवनी-शक्ति कहते हैं। जबतक मनुष्य स्वस्थ रहता है, तबतक जीवनी-शक्ति असीम क्षमताके साथ शरीरके समस्त अवयवों और अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको सुचारु रूपसे संचालित और संजीवित रखती है। इसीलिये स्वस्थावस्थामें मनुष्य अपने महान उद्देश्योंको पूर्ण करनेके लिये इस जड़ शरीरका यन्त्रवत् उपयोग कर सकता है।

(१०)

जड़ शरीरमें यदि जीवनी-शक्ति नहीं रहे, तो शरीरमें किसी प्रकारकी अनुभवशक्ति नहीं रहेगी और न मनुष्य आत्म-रक्षा ही कर सकेगा। स्वस्थ या अस्वस्थ दोनों ही अवस्थाओंमें जीवनी-शक्ति ही शरीरको सब प्रकारकी अनुभव शक्ति प्रदान करती और दैहिक क्रियाओंको सम्पन्न करती है।

(११)

मनुष्यके शरीरमें सर्वत्र यह जीवनी-शक्ति विद्यमान रहती है और वह स्वयं कर्मशील (Self-acting) है। सबसे पहले इसी जीवनी-शक्तिपर कोई विरोधी शक्ति आक्रमण करती है और पीछेसे वही रोगका रूप धारण कर मनुष्यके शरीरको कष्ट पहुंचाती है। वास्तवमें जब जीवनी-शक्ति ही स्वयं व्याधि-ग्रस्त होकर मनुष्य-शरीरमें अनियमित और विशृङ्खल

क्रिया करनेको बाध्य होती है, तभी हम यह कहते हैं, कि हमें रोग हुआ है। जिस प्रकार हम जीवनी-शक्तिका देख नहीं सकते, केवल शरीरपर होनेवाली क्रियाओंसे उसे जान सकते हैं, ठीक उसी प्रकार उसके व्याधि-ग्रस्त होनेपर हम मानसिक या शारीरिक विकृत अवस्थाओंका अनुभव करते और उसीसे रोगको भी जान पाते हैं।

(१२)

व्याधिग्रस्त जीवनी-शक्ति ही शरीरको अस्वस्थ बना देती है। अदृश्य जीवनी-शक्ति पीड़ाग्रस्त होनेपर ही अपनी अवस्था जतानेके लिये रोगके लक्षणोंको हमारे अनुभव-नेत्रोंके सामने प्रकट करती है। अतएव रोगके लक्षणही रोगके परिचायक हैं। स्वस्थावस्थामें विकार उत्पन्न होनेपर रोगके जो लक्षण प्रकट होते हैं, उन्हें चिकित्साद्वारा भली भाँति दूर कर देनेपर ही फिर स्वस्थावस्था आ जाती है और जीवनी-शक्ति रोग मुक्त हो जाती है।

(१३)

अस्त्र-विद्याके (Surgery) अन्तर्गत कई रोगोंके अतिरिक्त अन्य किसी रोगके लिये ऐसा खयाल नहीं किया जा सकता है, कि वह जीवनी-शक्ति या उसकी सञ्जीवनी क्रियासे पृथक रहकर जड़ शरीरके अन्दर किसी अवयवमें छिपकर या प्रकटरूपसे वर्त्तमान रहकर किसी प्रकारका शारीरिक या मानसिक कष्ट दे सकता है। तो भी प्राचीन असदृश चिकित्सा-प्रणालीके

अनुयायी चिकित्सकगण हज़ारों वर्षोंसे कुचिकित्साके द्वारा मानवसमाजकी भयङ्कर हानि करते चले आ रहे हैं।

(१४)

मनुष्यके शरीरमें ऐसी कोई व्याधि या व्याधिजनित परिवर्त्तन नहीं रह सकता है, जिसका प्रकृत दर्शकको कोई लक्षण न दिखाई दे। सर्वदर्शी तथा मङ्गलमय भगवान्‌की यह भी एक कृपा ही है, कि सभी रोग लक्षणोंके द्वाराही प्रकट होते हैं।

(१५)

जीवनी-शक्तिका रोग या उपयुक्त रोग प्रकट करनेवाले लक्षण-समूह दोनों एकही हैं। जिस प्रकार शरीर जीवनी-शक्तिके बिना कोई काम नहीं कर सकता है और न किसी चीज़का अनुभव ही कर सकता है, उसी प्रकार जीवनीशक्ति भी बिना शरीरके कोई काम नहीं कर सकती है। अतएव जीवितावस्थामें ये दोनों—जीवनीशक्ति और शरीर अविच्छिन्न हैं। केवल स्पष्टरूपसे समझने या समझानेके लिये हम उन्हें पृथक्-पृथक् कर देते हैं।

(१६)

हमारी जीवनी-शक्ति जड़ वस्तु नहीं है। इसलिये कोई बाहरी जड़पदार्थ उसपर आक्रमण नहीं कर सकता है। अतः अदृश्य रोगी शक्ति जीवनी-शक्तिपर किस प्रकार आक्रमण करती है या किस प्रकार उसे कष्ट पहुँचाती है, यह हम देख नहीं पाते।

चिकित्सक लोग रोग दूर करनेके लिये जो दवाइयाँ देते हैं, वे अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार जीवनी-शक्तिपर अपनी-अपनी क्रिया करती हैं। इसके बाद जीवनी-शक्ति ही उन सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्नायुसूत्रोंमें (नसों और रगोंमें) दवाइयोंकी क्रिया प्रकट कर रोगको समूल नाश करने लगती है, जिनमें चिकित्सकने अपनी दृष्टि द्वारा या परीक्षण-पर्यावेक्षण द्वारा रोगके लक्षणोंको देखा था। इस प्रकार जीवनी-शक्तिके कृतकार्य होनेपर रोग दूर हो जाता और फिर शरीर स्वस्थ हो जाता है।

(१७)

जीवनी-शक्तिके रोगग्रस्त होनेपर मनुष्य-शरीरकी स्वाभाविक क्रियाओंमें जो परिवर्त्तन या अन्तर दिखाई देते हैं, उन्हीं अन्तरों या परिवर्त्तनोंके सम्पूर्ण तथा स्थायी रूपसे दूर हो जानेसे ही समझना चाहिये, कि जीवनी-शक्ति रोगमुक्त हो गयी है, क्योंकि जीवनी-शक्तिका रोग तथा लक्षणोंकी समष्टि दोनों सर्वथा संश्लिष्ट और एकीकृत हैं—वे कभी पृथक् नहीं रह सकते। इस प्रकार चिकित्साके द्वारा फिरसे सम्पूर्ण और स्थायी रूपसे स्वास्थ्यके लौट आनेपर हमारा अभीष्ट पूर्ण हो जाता है। रोगोंके टेढ़े-मेढ़े और दुर्बोध्य नाम बता-बताकर जनसाधारणके पास प्रशंसा प्राप्त करना चिकित्सकका उद्देश्य नहीं है—उसका उद्देश्य है, रोगीको पूर्णरूपसे नीरोग करना।

(१८)

पूर्वोक्त सूत्रोंके द्वारा हम इस सिद्धान्तपर पहुँचते हैं, कि

औषधि-निरूपणके (दवा चुन लेनेके) लिये लक्षणोंकी समष्टि-को छोड़ और किसी चीज़की सहायता नहीं मिल सकती है। अत: औषधि-निर्वाचनके लिये केवल रोग-लक्षण ही हमारा एकमात्र सहारा और मार्ग-प्रदर्शक है।

(१६)

मनुष्यके शरीरकी स्वाभाविक और स्वस्थ अवस्थामें विकृति आ जाना ही रोग है और यह विकृति कई परिवर्त्तनोंके द्वाराही प्रकट होती है ; इसलिये अस्वस्थ मनुष्यको पुन: स्वस्थावस्थामें लानेके लिये उन्हीं उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये, जिनसे अस्वस्थावस्था परिवर्त्तित होकर पुन: स्वस्थावस्था आ जाये। इसीलिये बीमारीमें जिन दवाओंका प्रयोग किया जायेगा, उनमें ऐसी शक्ति होनी चाहिये, कि वे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कोई निर्द्दिष्ट परिवर्त्तन कर सकती हैं। औषधी जिस शक्तिके द्वारा रोग दूर कर सकती है, वह यही है, कि स्वस्थावस्थामें उसके सेवनसे वह एक प्रकारका निर्द्दिष्ट रोग उत्पन्न कर सकतो है। (१)

---

(१) इससे यह समझना चाहिये, कि जिस पदार्थके स्वस्था-वस्थामें सेवन करनेसे कोई निर्द्दिष्ट रोग उत्पन्न नहीं होता है, वह पदार्थ औषधी (Medicine) नहीं समझी जा सकती है। किसी पदार्थके सेवनसे यदि केवल इतना ही मालूम हुआ हो, कि यह 'रोग' उत्पन्न करता है ; परन्तु यदि यह निर्द्दिष्ट नहीं

(२०)

औषधी जिस अदृश्य शक्तिके द्वारा मनुष्यके स्वास्थ्यपर एक प्रकारका परिवर्त्तन कर सकती है और उस परिवर्त्तनसे रोग दूर कर सकती है, यह शक्ति केवल कोरे तर्कवितर्क द्वारा जानी नहीं जा सकती। स्वस्थ शरीरवाले मनुष्यको वह औषधि सेवन कराके जो परिवर्त्तन दिखाई दें, उन्हींसे उसकी वास्तविक शक्ति जानी जा सकती है। (२)

(२१)

औषधि किस प्रणालीके अनुसार रोग दूर कर सकती है, यह आप ही आप मालूम होनेका कोई उपाय नहीं है। यह जाननेके लिये कि किस रोगपर किस औषधीकी क्रिया कैसी होती है, इसकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म रीत्यानुसार परीक्षा करनेपर चिकित्सक यहींतक जान सकते हैं, कि औषधि जिस शक्तिके द्वारा किसी रोगको दूरकर सकती है, उस शक्तिके द्वारा स्वस्थावस्थामें मनुष्यके शरीरपर स्पष्ट और विशेषतापूर्ण परिवर्त्तन (या लक्षण) प्रकट कर सकती है। इस बातसे यही सारांश निकलता है कि कोई भी पदार्थ जब औषधिका काम करता है,

---

हुआ हो, कि वह 'रोग' किस प्रकारका है, तो हम उसे असम्पूर्ण, अपरीक्षित औषधि या drug कहते हैं। हमारे मतानुसार खाद्य पदार्थ या पथ्यको औषधि नहीं कह सकते हैं।

२—पशु-पक्षी या रोगी आदमीपर परीक्षा करनेसे औषधिकी वास्तविक शक्तिका परिचय नहीं मिलता है।

तब वह रोगपर उसी शक्तिके द्वारा काम करता है, जिसके द्वारा वह मनुष्यके स्वास्थ्यपर परिवर्तन ला सकता है। इसीलिये औषधिकी रोग दूर करनेकी अदृश्य शक्तिको जाननेके लिये पहले प्रत्येक औषधिकी रोग उत्पन्न करनेकी शक्तिको अच्छी तरह जान लेना चाहिये। इसके बाद यह मालूम किया जा सकता है, कि कौनसा रोग उसके द्वारा दूर हो सकता है।

(२२)

रोग केवल लक्षणोंके द्वारा जाना जासकता है, इसके सिवा रोगके वास्तविक स्वरूपको जाननेका और कोई उपाय नहीं है। ठीक इसी प्रकार औषधिकी क्रिया जाननेके लिये उसके द्वारा होनेवाले परिवर्त्तनों या लक्षणोंको देखनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। उससे यही सिद्धान्त निकलता है, कि प्रत्येक ओषधी कई निर्दिष्ट लक्षणोंको उत्पन्न करके रोगके निर्दिष्ट लक्षणोंको दूर करनेके काममें सहायता दे सकती है। अब परीक्षाकरके यह देख लेना आवश्यक है, कि कौनसी ओषधी कैसे लक्षणोंको उत्पन्न करती और कैसे लक्षणोंवाले रोगको दूर कर सकती है। इसके साथ ही यह भी देखना होगा, कि ओषधी अपने जिन लक्षणों द्वारा रोग-लक्षणोंको दूर करती है, वे 'सदृश' या 'विपरीत क्रिया करनेवाले हैं अथवा 'असदृश' क्रिया करने वाले।*

---

* ओषधियोंके लक्षण यदि मूल रोगके लक्षणोंसे मिलते जुलते हों, तो उन्हें 'सदृश क्रियावाली', औषधीके लक्षण यदि मूल

(२३)

विशेष रूपसे परीक्षा करके यह देखा गया है, कि कोई ओषधी 'विपरीत' या 'असद्वश' लक्षण उत्पन्न करके कभी रोग दूर नहीं कर सकती है। वैसी ओषधीसे रोगी थोड़ी देरतकके लिये भले ही कुछ आराम पा जाता हो, पर थोड़े ही समयके बाद मूल रोग और भी बढ़ जाता है (५८ से६६ तकके सूत्रोंको देखिये)।

(२४)

अतएव रोगको स्थायी रूपसे दूर करनेके लिये बाकी रहा केवल सद्वश-विधान। इस विधानके अनुसार रोग दूर करनेके लिये ऐसी ओषधी देनी चाहिये, जिससे स्वस्थ शरीरपर वैसे ही लक्षण उत्पन्न होते देखे गये हों, जैसे रोगके लक्षण हैं अर्थात् वे रोग-लक्षणोंसे मिलते जुलते हों।

(२५)

विशेष रूपसे परीक्षा करके देखा गया है, कि केवल सद्वश विधान ही (Homœopathy) एक मात्र अव्यर्थ चिकित्सा-विधान

रोगके लक्षणोंसे मिलते-जुलते न हों, तो उन्हें असद्वश क्रिया-वाली। ओषधीके लक्षण यदि मूल रोगके लक्षणोंसे उलटे हों, तो उन्हें विपरीत क्रियावाली कह सकते हैं। रोग-लक्षणों और औषधिजनित लक्षणोंमें परस्पर ये ही तीन प्रकारके सम्बन्ध हैं। इनके अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं।

है। मूल रोगके लक्षणोंके साथ ओषधी-जन्य लक्षणोंकी तुलना करनेपर यदि बहुत कुछ सादृश्य दिखाई पड़े, तो समझना चाहिये, कि यही ओषधी सूक्ष्म और क्रम-विशिष्ट मात्रामें देनेपर रोगको शीघ्रता पूर्वक स्थायी रूपसे दूर करके फिर स्वस्थावस्था ला सकती है, कभी और किसी भी हालतमें इस नियमके विरुद्ध परिणाम होता दिखाई नहीं दिया है। ऐसी कोई भी बीमारी नहीं है, जो इस नियमसे दूर न होती हो।

(२६)

एक मात्र सदृश चिकित्सा विधानके जिस नैसर्गिक, अचल और अटल नियम द्वारा रोग समूल नाश होता है, उसे आज तक बहुत लोग सन्देह-दृष्टिसे ही देखते थे, सन्देह-रहित होकर अबतक किसीने उसे ग्रहण नहीं किया था।

विधान यह है :—

जब शरीरके भीतर भिन्न-भिन्न कारणोंसे दो सदृश लक्षण-युक्त व्याधियाँ एकत्र होती हैं, तब उन दोनोंमें जो अधिक शक्तिशाली होती है, वह अल्पशक्तिशाली व्याधिको दूर कर देती है। (१)

१—कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो होमियोपैथीको हँसी उड़ाते और कहते हैं,—"एक आदमी अगर किसी जगहसे नीचे

(२७)

रोग दूर करनेके लिये औषधीमें दो प्रकारकी शक्तियोंका होना आवश्यक है। एक तो उसमें ऐसे लक्षणोंको उत्पन्न करनेकी शक्ति होनी चाहिये, जो रोग-लक्षणोंसे मिलते-जुलते हों और दूसरे मूल रोगकी अपेक्षा उसे अधिक बलवान होना चाहिये। औषधिमें 'लक्षण-सादृश्य' और 'अधिक बलवान' होनेका गुण यदि विद्यमान है, तो उससे रोगका निश्चित और स्थायी रूपसे दूर होना अवश्यम्भावी है।

(२८)

जब कभी इस नैसर्गिक विधानकी परीक्षा की गयी है, तभी इसकी सत्यता प्रमाणित हुई है, इसलिये रोग दूर करनेके विषयमें

गिर पड़े, तो उसे और भी ऊंची जगहसे गिरा देने अथवा यदि किसी आदमीको कोई चीज़ खा लेनेसे कोई बीमारी हो गयी हो, तो उसे वही चीज़ और भी अधिक मात्रामें खिला देनेको होमियोपैथी चिकित्सा कहते हैं"—इस प्रकारकी विचित्र चिकित्साका कोई अस्तित्व नहीं है—यदि होती, तो उसका नाम Treatment by identity या आइसोपैथी (होमियोपैथी नहीं) हो सकता था। दो विभिन्न कारणोंसे यदि दो सदृश लक्षणयुक्त रोग एक ही शरीरमें एकत्र हों, तो उनमें जो बलिष्ठ होता है, वह दुर्बलको निकाल देता है—इसीको होमियोपैथी कहते हैं।

यह एक स्पष्ट और प्रत्यक्ष फलप्रद विधान है। यह किस प्रकार घटित होता है, इसकी वैज्ञानिक व्याख्या न करनेसे भी कोई नुकसान नहीं है। इसलिये मेरी समझसे इस विषयकी वैज्ञानिक व्याख्या करके ऊँचा दिखानेको आवश्यकता नहीं है। तो भी अपनी अनुभूति और ज्ञान द्वारा मेरी जो धारणा हुई है, उसे नीचे लिखे देता हूँ।

(२६)

अस्त्र-विद्याके अन्तर्गत कुछ रोगोंको छोड़, संसारके अन्य सभी रोग कोई न कोई शारीरिक और मानसिक लक्षणों द्वारा ही प्रकट होते हैं। जीवनी-शक्तिके रोगको दूर करनेके लिये जब सद्वश-चिकित्सा-विधानके अनुसार दवा दी जाती है, तो वह दवा जीवनी-शक्तिपर ही एक ऐसी बलशाली कृत्रिम बीमारी उत्पन्न करती है, जो मूल रोगसे ग्रसित स्थानोंपर आक्रमण करती है और दुर्बल मूल रोगको निकालती जाती है। अन्तमें वह मूल रोगको शरीरसे ही निकाल बाहर करती है। मूल रोगकी अपेक्षा औषधि-जनित रोगको दूर करनेमें यद्यपि जीवनी-शक्तिको अधिक ताक़त लगानी पड़ती है, तथापि औषधिकी क्रिया—मात्रामें कम होनेके कारण—अधिक समयतक शरीरमें नहीं ठहरती है। इसीलिये मूल रोगके दूर होते ही औषधि-जनित रोगसे भी जीवनी-शक्ति मुक्त हो जाती है। इस प्रकार वह दोनों प्रकारके रोगोंसे मुक्त होकर स्वास्थ्योपयोगी समस्त स्वाभाविक क्रियाओंको कर सकती है। नीचे लिखे "स्वयंसिद्ध"

(Axiom) से यह बात जानी जाती है, कि औषधिजनित रोग मूलरोगकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है।

(३०)

मनुष्यके स्वास्थ्यको प्राकृतिक रोग जितना दुर्बल और नष्ट कर सकता है, औषधिजनित रोग उसको अपेक्षा अधिक दुर्बल और नष्ट करता है। (बहुत अंशोंमें इसका कारण यह है, कि हम अपने इच्छानुसार दवाकी मात्रा बढा सकते हैं।)

(३१)

प्राकृतिक रोग (natural morbific agents) जीवनी-शक्तिपर आक्रमणकर जो शारीरिक और मानसिक परिवर्त्तन उत्पन्न करते हैं, उसका एक विशेष नियम है। वह नियम यही है, कि जीवनी-शक्तिमें रोग द्वारा प्रभावित होनेका एक गुण होता है, जिसे जीवनी-शक्तिकी रोग-प्रवणता कह सकते हैं, और इसी रोग-प्रवणता (रोग ग्रहण करनेकी शक्ति) की कमी या ज़ियादतीके कारण वह आक्रान्त होती या नहीं होती है। इसी कारण, हरएक आदमी प्राकृतिक रोगोंद्वारा आक्रान्त नहीं होता।

(३२)

परन्तु ओषधीकी शक्ति दूसरे प्रकारकी होती है। प्रत्येक ओषधी प्रत्येक समयपर, प्रत्येक मनुष्यके शरीरपर समान रूपसे अपनी क्रिया कर सकती है। अधिक मात्रामें सेवन करानेसे स्वस्थ शरीरपर ओषधी अपनी क्रिया स्पष्ट रूपसे लक्षणोंद्वारा प्रकट करती है। प्राकृतिक रोगको जिस प्रकार आधारको

आवश्यकता होती है, ओषधीको वैसे किसी आधारकी आवश्यकता नहीं होती है। ओषधी-जनित रोग उत्पन्न करनेके लिये प्रत्येक मनुष्यकी जीवनी-शक्तिमें यथेष्ट मात्रामें रोग-प्रवणता (रोग ग्रहण करनेकी शक्ति) होती है।

(३३)

इन बातोंसे यह बात स्पष्ट रूपसे मालूम होती है, कि प्राकृतिक रोगको अपेक्षा ओषधी-जनित रोग कहीं अधिक शक्तिशाली होता है। प्राकृतिक रोगकी शक्ति मनुष्यको रोगग्रस्त करनेके लिये जिस प्रकारकी शर्तों से बँधी रहती है, ओषधीकी शक्ति उस प्रकारकी किसी शर्तसे बँधी नहीं रहती।

(३४)

परन्तु केवल अधिक शक्ति-सम्पन्न होनेके कारण ही ओषधी किसी प्रकार प्राकृतिक रोगको दूर नहीं कर सकती है। रोग दूर करनेके लिये औषधिमें अधिक शक्तिका होना जितना आवश्यक है, उसीके द्वारा होनेवाले कृत्रिम रोग तथा मूल रोगके लक्षणोंका एक सदृश होना भी उतना ही आवश्यक है। केवलमात्र इसी एक उपायसे रोग वस्तुतः दूर हो सकता है। जिस प्रकार कोई ओषधी असदृश लक्षणोंको उत्पन्न करके किसी मूल रोगको शरीरसे दूर नहीं कर सकती, उसी प्रकार असदृश लक्षण-विशिष्ट कई रोग एकत्र होनेपर एक दूसरेको दूर नहीं कर सकते हैं।

(३५)

उदाहरणके लिये, हम तीन प्रकारके विषय ले सकते हैं। इन तीन विषयोंसे हम यह देख सकेंगे, कि जिस तरह कोई ओषधी अपढि असदृश लक्षणों द्वारा मूल रोगको दूर नहीं कर सकती है, इसी तरह ही ऐसे प्राकृतिक रोग, जिनके लक्षणोंमें सादृश्य नहीं होता, एक दूसरेको दूर नहीं कर सकता है।

(३६)

I. यदि एक शरीरमें दो रोग एकत्र हों और उनमें पहले-की शक्ति दूसरेकी शक्तिके बराबर हो या उससे अधिक हो, तो पहला रोग दूसरेको शरीरपर कोई क्रिया करने नहीं देता। यदि किसीको कोई अधिक बलशाली पुराना रोग है, तो वह शरत्कालके साधारण अतिसार या अन्य संक्रामक रोगसे कभी आक्रान्त नहीं हो सकता। डाकृर लैरी (Dr. Larry.) का कहना है, कि जहाँ (Scurvy) शीताद नामक रोग वर्त्तमान रहता है, वहाँ साधारण प्लेग (Plague) या ताऊन होते नहीं देखा गया। ("Memories of observation" in the description de 1. Egypta tom. i.) और पामा या अकौता (Eczema) के रोगीको प्लेग कभी नहीं होते देखा गया। डाकृर जेनर (Jenner) का कहना है, कि (Rachitis) सुखन्ना रोगवाले बच्चोंको टीका देनेसे कोई फल नहीं होता। डाक्टर हिएडेनब्रैण्ड (Dr. Hindenbrand) का कहना

कि क्षयी, यक्ष्मा आदि रोग-पीड़ित मनुष्यके शरीरपर साधारण या अन्य किसी प्रकारका ज्वर आक्रमण नहीं करता।

(३७)

रोगियोंकी चिकित्सा करते समय यह अकसर देखा जाता है, कि कोई ऐसी असदृश लक्षणयुक्त औषधी देनेसे रोगीपर कोई परिवर्त्तन होता नहीं दिखाई देता, जो मूल व्याधिसे कम शक्तिशाली होती है। इस प्रकारकी असदृश चिकित्सा वर्षों तक करते रहनेपर भी कोई अच्छा फल होता नहीं दिखाई देता! यह बात अकसर देखनेमें आती है, इसलिये इसका कोई उदाहरण नहीं दिया गया।

II. यदि नवागत असदृश रोग पहले रोगसे अधिक शक्तिशाली होता है, तो उस अवस्थामें पहला रोग शरीरके किसी जगह छिप कर मृतवत् पड़ा रहता है और जबतक नवागत रोग दूर नहीं हो जाता, तबतक वह वहीं छिपा हुआ रहता है। नये रोगके शरीरसे दूर हो जानेपर वह पहला रोग फिर अपने लक्षणों सहित प्रकट हो आता है। डाकृर टल्पियस (Dr. Tulpius) का कहना है, कि दो लड़कोंको मृगीकी बीमारी थी। कुछ दिनों बाद उनके सिरपर दाद हो गया। दादके होतेही उनकी मृगी बन्द हो गयी; परन्तु जब दाद छूट गया, तब फिर मृगीरोग प्रकट हो आया। (Obs. lib. i. obs 8) डाकृर स्कौफ (Dr. Schopf) का कहना है, कितने ही रोगियोंको (Scurvy) शीताद रोग होते ही, खुजली

आदिकी बीमारीको—जो पहलेसे थी—छिप जाते देखा गया हैं। पर इस रोगके दूर होते ही फिर खुजली आदि बीमारी निकलती देखो गयी है (in Hufeland's Journal xv. 2.) यक्ष्मा या क्षयी रोगके रोगीको यदि टाइफस्-ज्वर हो जाये, तो ऐसा देखा गया है, कि उस अवस्थामें ज्वरके फेफड़ेके सब दोष दूर हो जाते हैं। पर ज्योंहों टाइफस्-ज्वर दूर हुआ, त्योंहीं फिर क्षयी रोग अपने सम्पूर्ण लक्षणों सहित प्रकट हो आता है (Chevalion in Hufeland's Nuesten Annalen der frazosicehn ii, p. 192) Riet Memoral fase iii, v. p. 172 से मालूम होता है, कि यक्ष्मा रोगसे पीड़ित मनुष्यको यदि उन्माद रोग (पागलपन) हो जाता है, तो उस अवस्थामें उसका यक्ष्मारोग छिप जाता है। पर उन्माद रोगके लक्षणोंके दूर होते ही यक्ष्मा रोग ऐसे भयङ्कर रूपमें प्रकट होता है, कि रोगीकी मृत्यु निकट ला देता है। जब चेचक और बोदरी दोनों रोग एक ही स्थानपर और एक ही साथ होते हैं, तब यदि बोदरो* रोगवाले बालकको चेचक हो जाये, तो बोदरीकी क्रिया रुक जायेगी और चेचक पहले अपना क्रिया करेगा। वह छः दिनोंतक अपना काम करता है। उसके बाद बोदरी अपनी क्रिया करती है। डाक्टर मैगनेट (Dr. Mgnet) ने देखा है, कि टीका देनेसे जो चेचक उत्पन्न होता है, उसके साथ ही साथ यदि बोदरी भी होती है, तो वही बोदरी

---

*चेचक—Smallpox, बोदरी—Measles,

पहले चार दिनोंतक अपनी क्रिया करती है, उसके बाद टीकासे होनेवाला चेचक अपना काम करता है (in the Edinb. Medical Comment pt. i. 1)। ऐसाभी देखा गया है, कि टीकासे होनेवाले चेचकने ८ दिनोंतक अपना काम किया, इसके बाद बोदरी हुई। इस हालतमें बोदरीही सात दिनोंतक अपनी क्रिया करती रहती है और चेचकसे होनेवाले दाने आदि एक ही भावसे रहते हैं। बोदरीकी क्रिया खतम होनेपर, सात दिनोंके बाद चेचक फिर अपना काम शुरू करता है। (Jhon Hunter, on the venereal diseases P. 5.)। डाकृर रैनी (Dr. Rainey) ने अपने Edinb. Med. Comment iii P, 480) के लेखमें, लिखा है, कि उन्होंने भी चेचकके प्रकोपके दिनोंमें एक बार देखा है, कि टीका देनेसे होनेवाले चेचकके दाने आदिके प्रकट होनेके तीन चार दिनोंके बाद बहुतोंको बोदरी होती दिखाई दी है और उसके साथ ही टीकेके दाने आदि दब जाते हैं और बोदरीकी क्रिया पूरी होनेपर वे फिर उठ आते हैं और अपनी क्रिया पूरी करते हैं। डाक्टर विदरिङ्ग (Withering) और प्लेनसिज़ (Plenciz) का कहना है, कि स्कार्लेट या लाल-ज्वरमें, हलकका ज़ख्म (कण्ठका घाव) चौथे दिन गोबीजसे दिये जानेवाले टीकेसे छिप जाता है और उस टीकेका असर हो चुकनेके बाद वह फिर निकल आता है। उक्त दोनों डाक्टर महोदयोंने यह भी देखा है, कि स्कार्लेट या लाल-ज्वर टीकेकी क्रियाओंको दबाकर पहले अपना काम पूरा

करता है, इसके बाद फिर टीकेसे होनेवाला चेचक अपना काम करता है (Jenner in Medicinische Annalen, August 1800, P. 747.)। डाक्टर कोर्टम (Dr. Kortum) कहते हैं, कि उन्होंने किसी आदमीको देखा, कि आठ दिनोंतक उसके शरीरपर टीकेसे होनेवाले चेचकने अपना काम किया। उसके बाद उसे बोदरी हुई। बोदरीके होते ही टीकेसे होनेवाले दाने ग़ायब हो गये। फिर बोदरीका असर मिट जानेके बाद वे दाने निकल आये। अगर ऐसा नहीं होता, तो जो टीका १६ दिनमें अपना काम पूरा कर सका, वह १० ही दिनोंमें अपना काम कर लेता (In Hufeland's Jourual de Praklischen Arzeneikunde xx. 3. P. 50.)। डाक्टर कोर्टम (Dr. Kortum) ने यह भी देखा है, कि बोदरी होनेके बाद टीकेसे होनेवाला चेचक दिखाई देता और बोदरीको छिपा देता है और फिर जब उसका असर मिट जाता है, तब बोदरी निकलकर अपना काम पूरा करती है (Loc. cit)।

मैंने (हैनिमैन) ने देखा है, कि किसी-किसी Mump. (गाल फूलनेकी बीमारी) मम्परोगके रोगीके गालको सब पीड़ा टीकेसे होनेवाली बड़ी-बड़ी गोटियोंके निकलते ही दब गयी हैं। सूजन कम हो गया है। फिर गोटियोंके दब जानेके बाद गालकी सूजन फिर बढ़ जाता है और सात दिनोंमें Mump रोग अपना काम पूरा करता है।

इस प्रकार जब दो असदृश रोग किसी मनुष्यके शरीरमें एक ही साथ होते हैं, तब उनमेंसे जो कमज़ोर होता है, वह कुछ समय-के लिये केवल दब कर छिप जाता है ; क्योंकि उनमेंसे एक दूसरेको दूर नहीं कर सकता है।

(३६)

सैकड़ों वर्षोंसे ऐलोपैथिक चिकित्सकगण इस प्रकारके उदाहरण प्रत्यक्ष देखते आ रहे हैं । वे देखते आते हैं, कि प्रकृति अपनी एक अत्यन्त शक्तिशाली व्याधिके द्वारा उससे भी दुर्बल परन्तु असदृश्य लक्षण-युक्त किसी अन्य व्याधिको दूर नहीं कर सकती है। यह देख कर भी न मालूम क्यों वे पुराने रोगोंकी चिकित्सा भी इस प्रकारकी असदृश ओषधी द्वारा करते हैं! रोगकी चिकित्सा करते समय वे जो ओषधियाँ चुनते हैं, उनकी समष्टि-क्रियाको वे अच्छी तरह नहीं जानते हैं ; क्योंकि स्वस्थ और सबल शरीरपर उनकी परीक्षा नहीं ली गयी है। तो भी उनकी अधिकतर ओषधियाँ असदृश भावसे क्रिया करती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि यह भी मान लिया जाये, कि उन लोगोंने एक ही मनुष्यके शरीरमें एकही समय दो असदृश रोगोंके एकत्र होनेसे जो परिणाम होता है, उसे नहीं देखा है, तो क्या उन्हें अपनी दी हुई ओषधियोंसे होनेवाली हानियोंको देख कर भी यह

नहीं समझना चाहिये था, कि उनका मार्ग—उनकी चिकित्सा-प्रणाली ठीक नहीं है? क्या उन लोगोंने यह नहीं देखा है, कि साधारणत: वे जो ओषधियाँ देते हैं, वे पहले तो रोगको कुछ-कुछ दबाती हैं; पर पीछे उनसे कोई फल नहीं होता, बल्कि उस समय रोगके समस्त लक्षण पूर्वापेक्षा और भी बढ़ जाते हैं? खुजलीकी बीमारीमें देखा गया है, कि सख़्त जुलाब देनेसे खुजली घट जाती हैं, पर ज्योंही जुलाबका असर दूर हो जाता है, त्योंही या तो खुजली फिर भी निकल आती है या अग्निमान्द्य, दुर्बलता आदि भीतरी रोग (Psora) प्रकट हो आते हैं। इस प्रकारके भीतरी रोगोंको दूर करनेके लिये एलोपैथिक चिकित्सकगण प्राय: चमड़ेमें घाव बनाकर दवा डालते हैं या गुल लगाते हैं। इससे कुछ दिनोंके लिये आन्तरिक व्याधियाँ दब जाती हैं, परन्तु वे स्थायी रूपसे दूर नहीं होतीं। डा० पेचिलिन (Dr. Pechilin) तथा और-और चिकित्सकोंने देखा है, कि इस प्रकार (tissue) चमड़ेपर घाव बनाकर * दवा देनेसे मृगीरोग लुप्त हो जाता है; पर उस घावके सूखनेके साथ ही मृगीरोग फिर प्रकट हो आता है। जो हो, चर्म-रोगको दूर करनेके लिये जो विरेचक ओषधियाँ (दस्तावर दवाएँ) दी जाती हैं और पुराने रोगोंके लिये शरीरपर घाव बनाकर जो

---

* जैसे आँखकी बीमारियों या पागलपनमें छाला उठानेकी प्रथा प्रचलित है।

दवाएँ दी जाती हैं, उनसे उतनी हानि नहीं होती, जितनी उनकी अपरीक्षित, अज्ञात क्रियाशील ओषधियों (Patent Medicines) द्वारा होती है। इन पेटेण्ट दवाइयोंसे रोग कभी दूर नहीं हो सकता। इनसे केवल थोड़ी देरके लिये रोग दब जाता है। फिर बार-बार इस प्रकार अस्थायी रूपसे रोगको दवाने-की आशासे बहुत दिनोंतक इन दवाओंके देते रहनेसे स्वाभा-विक रोगके साथ यह ओषधी-जनित रोग मिलकर एक और नया रोग खड़ा हो जाता है।

(४०)

III, फिर ऐसा भी देखा गया है. कि पीछेसे होनेवाली नयी असदृश लक्षणयुक्त बीमारी पुरानी बीमारीको प्रकट होनेके लिये बाध्य करती है। इस हालतमें दोनों बीमारियाँ शरीरके भिन्न भिन्न अङ्गोंपर अपने-अपने लक्षणोंको एक साथ ही प्रकट करती हैं ! जैसे—गर्मी (सिफिलिस) और सोरा (Psora) ये दोनों बीमारियाँ एक ही समय एकही आदमीके शरीरमें भिन्न-भिन्न अंशोंपर अपना काम करती हैं। ये दोनों असदृश लक्षण युक्त हैं अर्थात् इन दोनों बीमारियोंके लक्षणोंमें सादृश्य नहीं है, इसी-लिये इनमेंसे एक दूसरीको दूर नहीं कर सकती। पहले जब सोरा (Psora) के घाव त्वचापर फूट निकलते हैं, तब उसके साथही जननेन्द्रियपरके घाव दब जाते हैं ; परन्तु पीछेसे दोनों साथ-ही-साथ फूट निकलते हैं। इस हालतमें दवा देकर

उन्हें आराम करना बड़ाही कठिन हो जाता है। साधारणत: एकही समय अगर दो नयी बीमारियाँ एकही शरीरमें प्रवेश करती हैं, तो उनमेंसे एक दूसरीको दबाकर अपना काम करने लगती है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है, कि दोनों बीमारियाँ एकही साथ अपने-अपने लक्षण प्रकट करती हैं। एक बार, एकही साथ, एकही शरीरपर चेचक और बोदरी दोनों रोग हुए थे। उस समय देखा गया था, कि तीन सौ आदमियोंके शरीरपर बोदरीके साथही चेचक हुआ और जबतक चेचकका प्रकोप बना रहा, तबतक बोदरी छिपी रही और चेचकका प्रकोप कम हनेपर फिर बोदरी निकल आयी और उसने अपना काम पूरा किया। साथही यह भी देखा गया है, कि चेचकका प्रकोप कम होते-न होते बोदरी निकल आयी और उसके निकलनेसे चेचक छिप गया। बोदरीके दूर हो जानेपर फिर चेचक निकल आया और उसने अपना काम पूरा किया। डाक्टर पी० रसेलने (Dr. P. Russell) देखा था, कि किसी रोगीके शरीरपर बोदरी और चेचक, एकही साथ प्रकट होकर और साथ-ही-साथ रहकर दोनोंने अपना-अपना काम किया है (Transaction of society for the improvement of Med. & their knowledge ii)। डाक्टर रेनीने (Rainey) दो बालिकाओंके शरीरपर इस प्रकार चेचक और बोदरीको एकही साथ काम करते देखा था (Edinb. Med. Comment .iii p. 480)। डा० जे० मारिसने (Dr. J Maurice) अपने

समस्त चिकित्सक-जीवनमें ऐसे दो रोगियोंको देखा है। डा० एटनुलार (Dr. Etnullar) ने अपने एक ग्रन्थमें ऐसे कितनेही उदाहरणोंकी चर्चा की है। डा० जेनोवरने (Dr. Zenover) एकही समय, एकही रोगीको गोवीज-जनित * चेचक, बोदरी और पपिंउरा नामक चर्मरोग द्वारा आक्रान्त होते देखा है (In Hufeland's Journal xvii)। डा० जेनर (Dr. Jenner) ने देखा है, कि आतशक या गर्मीवाले रोगीको मर्करी (पारा) द्वारा चिकित्सा की जानेपर उसे गोबीज-जनित चेचक निकल आया था। दोनों बीमारियोंमें किसीने दूसरीको क्रियामें किसी तरहकी रुकावट नहीं डाली।

(४१)

इस प्रकारके दो स्वाभाविक रोग एकही साथ एकही आदमी-के शरीरपर होते जितनी वार देखे जाते हैं. उससे कहीं अधिक-वार ऐलोपैथिक चिकित्सकगण बहुत अधिक मात्रामें असदृश ओषधीयाँ देकर एकही समय दो असदृश रोग उत्पन्न किया करते हैं। कोई स्वाभाविक रोग जो सदृश चिकित्सा-पद्धतिकी ओषधिके बिना कभी दूरही नहीं हो सकता, उसे ऐलोपैथिक चिकित्सक असदृश लक्षण-विशिष्ट ओषधीकी दीर्घ मात्रा द्वारा

---

* गऊके थनसे जो रस चेचकका टीका देनेके लिये निकालते हैं, उसे गौबीज कहते हैं।

दूर करनेकी चेष्टा करते हैं। इसका फल यह होता है, कि एक दीर्घकाल स्थायी रोगको (बहुत दिनोंतक रहनेवाली बीमारीको) दूर करनेके बदले वे असदृश ओषधी द्वारा एक और दीर्घकाल स्थायी ओषधी-जनित रोग उत्पन्न कर देते हैं। इस तरह एक रोगके बदले दो रोगोंके उत्पन्न हो जानेसे रोगीका नीरोग होना असम्भव सा हो जाता है। चिकित्सा-विषयक जो संवाद-पत्र निकलते हैं, उनमें साधारणतः रोगियोंके जो विवरण मिलते हैं और उनके कारणोंकी आलोचना करनेपर जो निष्कर्ष निकलते हैं, उनसे भी इस बातका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। (सिफिलिस) गरमा या आतशकके जिन रोगियोंको साथही सोरा (Psora) या साइकोसिस गनोरिया (सूजाक) का रोग होता है, उन्हें पारा मिली हुई ओषधियाँ दे-देकर एलोपैथिक चिकित्सक लोग रोगियोंके शरीरको पारासे भर देते हैं। इस प्रकार रोगोकी अवस्था कई तरहकी बीमारियोंके मिल जानेके कारण ऐसी शोचनीय हो जाती है, कि उसे नीरोग करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन तो अवश्य ही हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

(४३)

ऊपर लिखे हुए उदाहरणोंसे मालूम होता है, कि प्रकृति एकही साथ दो असदृश रोगोंको एकही शरीरमें उत्पन्न होने देती है। इससे जाना जाता है, कि कई ऐसे रोग जिनके लक्षण भिन्न-भिन्न हैं, एकही जीवनी-शक्तिको अवलम्बन करके साथ-ही-

साथ अपना काम कर सकते हैं। ये जीवनी-शक्तिके एकत्वमें कोई रुकावट नहीं डालते ; साथही वे असदृश लक्षण-विषिष्ट होनेके कारण एक दूसरेको दूर भी नहीं कर सकते हैं।

(४३)

परन्तु दो सदृश लक्षण-विषिष्ट रोगोंके एकत्र होनेसे उसका फल कुछ और ही होता है। उनमें यदि एक दूसरेकी अपेक्षा अधिक बलशाली होता है, तो वह कमज़ोर रोगको दूर कर देता है। इस बातको सत्यताको जान लेनेसे यह मालूम हो जाता है, कि किस पद्धतिके अनुसार चिकित्सा करनेसे रोग समूल विनष्ट हो सकता है।

(४४)

सूत्र संख्या ३६ (I) के अनुसार दो असदृश बीमारियोंके एकत्र होनेपर उनमें पहली यदि सबल हुई, तो दूसरीको कोई क्रिया नहीं करने देती है और सूत्र संख्या ३८ (II) के अनुसार एक दूसरीको दबा देती है और फिर पहलीकी क्रिया समाप्त होने पर दूसरी अपनी क्रिया आरम्भ करती है ; परन्तु दो सदृश लक्षणोंवाली बीमारियोंके एकत्र होनेपर ऐसा नहीं होता। सूत्र संख्या ४० (III) के अनुसार जिस प्रकार दो बीमारियाँ साथ-ही-साथ अपनी पृथक्-पृथक् क्रियाएँ करती हैं, दो सदृश लक्षणोंवाली बीमारियोंके एकत्र होनेसे वैसा नहीं होता है—अर्थात् रोगी एकही समय दो सदृश रोगोंसे पीड़ित नहीं होता।

दो भिन्न-भिन्न कारणोंसे होनेवाली सदृश लक्षणोंवाली बीमारियोंके एक शरीरमें एकत्र होनेपर उनमेंसे एक दूसरीको सब जगहोंपर अधिकार कर लेती और एक ही तरहके लक्षणोंके उत्पन्न करनेकी चेष्टा करती है। इसका परिणाम यह होता है, कि यदि पिछली बीमारी पहलीकी अपेक्षा अधिक बलवती होती है, तो वह पहली बीमारीको खदेड़ देती है, या दूसरे शब्दोंमें यों समझिये, कि जीवनी-शक्ति जब एक अधिक बलवती बीमारी द्वारा आक्रान्त होती है, तब दूसरी बीमारी जो कमज़ोर होती है, शरीरमें कहीं ठहरनेकी जगह न पाकर * लाचार होकर शरीरसे निकल जाती है।

सदृश चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार रोग दूर करनेके कितने ही प्राकृतिक उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु हमने यहाँ केवल वे ही उदाहरण दिये हैं, जो आसानीसे हरएककी समझमें आजायें। इसके लिये हमें केवल उन्हीं रोगोंको लेना पड़ा है, जो खासकर एकही तरहके या अपरिवर्त्तनशील लक्षणों द्वारा प्रकट होते हैं। ये सब रोग प्रायः निश्चित रोग-मूल (Miasm) से उत्पन्न होते हैं और इसीलिये इनका निश्चित नाम भी रखा जाता है। †

* क्योंकि अधिक बलवती व्याधि सदृश लक्षण उत्पन्न करके उसकी जगहपर अपना अधिकार कर लेती है।

† कुछ ऐसे भी रोग हैं, जिनके निश्चित नाम हैं, पर देखा जाता

ऐसे रोगोंमें चेचक भी एक रोग हैं। इसकी भयङ्करता और इसके लक्षण समूह सभी अच्छी तरह जानते हैं। बहुतसे रोग सदृश लक्षणोंके अनुसार एक चेचकके द्वारा आराम होते हैं। चेचकमें अकसर आँखोंमें जलन पैदा होती है। डाक्टर डेज़ो टियूज़ और लियोरी (Drs. Dezo Toux and Leory) ने देखा है कि, आँखोंकी जलनकी पुरानी बीमारी चेचक द्वारा आराम हो गयी है (Trait de inoculation P. 189; Heilkunde for Mutter, P. 384)। सिरमें किसी प्रकार चोट लग जाने या कट जानेसे जो घाव होता है, इसके आराम हो जानेपर आँखें ख़राब हो जाती हैं; पर डा० क्लेइन (Dr. Klein) ने देखा है, कि चेचकसे आँखका दोष दूर हो जाता है। (Interpres clinicus P. 293) चेचकके रोगीको बहरापन या साँसकी रुकावटकी बीमारी होती देखी जाती है; पर डा० जे. एफ. क्लौस (Dr. J. F. Closs) ने देखा है, कि चेचकके द्वारा पुराने बहरेपन और श्वासकष्ट रोग दूर हो जाते हैं (Neune Heilart der Kenderhocken ulm 1767,

---

है कि, वे सालोंसाल अपने नये लक्षणों द्वारा प्रकट होते हैं। अतएव इन रोगोंसे सदृश चिकित्सानुसार कोई रोग दूर होनेपर भी उनका कोई निश्चित नाम नहीं दिया जा सकता; क्योंकि लक्षण-सादृश्य नहीं होनेपर उनसे यथोचित फल नहीं हो सकता है।

P. 61 and specim. obs., no. 18) चेचक होनेसे अण्डकोष-में जलन पैदा होती है। डाकृर क्लेइन (Dr. Klein) ने देखा है, कि चोट लगनेसे पैदा हुई बाँयी तरफ़के अण्ड-कोषकी पोड़ा और अण्डकोषकी पुरानी जलन चेचकके द्वारा दूर हो जाती है (Opt. cit.) एक और सुप्रसिद्ध डाकृरने परीक्षाद्वारा यही बात देखी है (Nov. Act. Not. cur Vol I. ob. 22) बहुत बार ऐसा देखा गया है, कि चेचक होनेपर आँवके दस्तोंकी बीमारी हो जाती है। डा० वेण्ड्टने (Dr. Wendt) देखा है, कि चेचकके द्वारा पुरानी आँवकी बीमारी भी दूर हो जाती है (Nachricht von dem Zu enlargen, 1783) डाकृर मुहरे (Dr. Muhrey) तथा और भी कितने ही विद्वान् डाकृरोंने देखा है, कि टीका लेनेपर अगर किसीको चेचक निकल आता है, तो टीकाकी सब क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं ; साथ ही यह भी देखा है, कि टीका-की क्रिया अधिक शक्तिशाली होनेपर चेचक शरीरसे निकल जाता है। यह सब सदृश क्रियाओंका ही फल है (William uber die Kuhpocken imfung, ans dem engl. nit Zusalzen. G. P. Muhrey, Gothenge 1808)। बहुतोंने देखा है, कि छोटे बच्चोंको गोटीदार खुजली, टीकासे होनेवाले चेचककी गोटियोंके दूर होनेके साथही दूर हो जाती है। (Journal de medine continue Vol xv P. 206 etc.) टीकासे होनेवाले चेचकमें कभी-कभी बाँहें फूल जाती और कड़ी

हो जाती हैं। एक बार ऐसा देखा गया है, कि लकवेकी बीमारीसे जो बाँहोंकी जलन होती है, वह टीकेसे होनेवाले चेचकसे आराम हो जाती है (Balhorn, Hufeland's Journal xxiii etc.) डा० हार्डेज, (Dr. Hardege) डा० जे, हण्टर (Dr. J. Hunter) तथा मैंने खुद भी (हैनिमैनने) देखा है, कि टीकेसे होनेवाले चेचकमें जो बुखार हुआ करता है, उसके द्वारा सदृश लक्षण-विशिष्ट दूसरे अविराम और सविराम ज्वर (Remitant and intermitant) दूर हो जाते हैं (Hufeland's Journal xxiii, Haluem-an's chronic diseases part I.)।

बोदरीसे होनेवाले ज्वरमें सूखी खाँसीके लक्षण दिखाई देते हैं। डाक्टर बासकिलनने (Dr. Basquillon) एक बार संक्रामक रोगमें जब कि बोदरी और सूखी खाँसी दोनोंका प्रकोप था, उसी समय देखा है, कि जिन लड़कोंको बोदरीका रोग हुआ, उनको सूखी खाँसी नहीं हुई (Cullen's elements of practical Medicine pt. 2 i ch. vii) अगर इस खाँसीमें शरीरके ऊपरी चमड़ेपर दाने उत्पन्न करनेकी शक्ति होती तथा दोनों रोगोंके समस्त लक्षणोंमें पूर्ण समानता होती, तो बोदरीके द्वारा सब तरहकी सूखी खाँसी—सदृश लक्षण होनेके कारण—दूर की जा सकती थी। परन्तु कुछ लक्षणोंमें समानता होनेके कारण सदृश-विधानके अनुसार कितने ही रोगी बोदरी होनेसे खाँसीके कष्टोंसे मुक्त हो जाते हैं। अगर किसी

प्रकारके चर्मरोगके साथ बोदरीकी गोटियोंसे सादृश्य होता है, तो वह बोदरीके द्वारा जड़से दूर हो जाता है। डा० कोर्टमने (Dr. Kortum.) देखा है, कि सदृश-लक्षण-विशिष्ट होनेके कारण पुरानी दाद-रोग बोदरीके द्वारा दूर हो जाता है। एक आदमीके चेहरेपर एक प्रकारका चर्मरोग हुआ था। उसमें जलन बहुत थी। वह बेचारा ६ वर्षोंसे कष्ट पा रहा था। उस आदमीको बोदरी निकल आयी और बोदरीके निकलते ही उसके चेहरेपरके घाव फूल गये। इसके बाद बोदरीके हटते ही उसका वह जलन-शील चर्मरोग भी दूर हो गया। उस आदमीको फिर कभी वह बीमारी नहीं हुई।

(४७)

प्रकृति स्वयं किस प्रकार सदृश लक्षणोंवाली बीमारीयोंको उत्पन्न कर रोगोंको दूर करती है, इसके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। जितनी सुगमतासे जिज्ञासु चिकित्सकोंको यह बात इन उदाहरणोंके द्वारा बतायी जा सकती है, कि औषधि देकर भी सदृश-लक्षण उत्पन्न करनेवाली क्रियासे रोग दूर किये जा सकते हैं, उतनी सुगमता और सरलतासे और किसी भी उपायसे नहीं बतायी जा सकती। उपर्युक्त उदाहरणोंपर आसानोसे लोग विश्वास भी कर सकते हैं।

(४८)

ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता है, कि प्रकृतिने असदृश

लक्षण-विशिष्ट एक रोग द्वारा दूसरे रोगको दूर कर दिया हो अथवा कोई चिकित्सक अपनी ओषधी द्वारा असदृश लक्षण उत्पन्न करके किसी रोगको दूरकर सके हों। प्रकृतिके इस अपरिवर्त्तनशील और अटल नियमसे यही मालूम होता है, कि केवल अधिक शक्तिशाली रोग ही दूसरे रोगको दूर कर सकता है, जिनके लक्षण मिलते-जुलते हों। इस अटल नियमके विरुद्ध कार्य होते कभी देखा नहीं गया है।

(४६)

अगर विद्वान् चिकित्सकोंने इस बातकी ओर और भी अधिक ध्यान दिया होता, तो हम इस बातकी पुष्टिके लिये और भी बहुतसे उदाहरण या प्रमाण दे सकते। परन्तु इसका एक विशेष कारण है—और वह यही है, कि प्रकृतिके आधीन ऐसे बहुत अधिक रोग नहीं हैं जो दूसरे रोगोंको दूर कर सकते हों।

(५०)

अनन्त बलशालिनी प्रकृतिके आधीन सदृश लक्षण-विशिष्ट रोग उत्पन्न करके अन्य रोगोंको दूर करनेके लिये जो यन्त्र हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है। साथ ही बोदरी, चेचक आदिके द्वारा यद्यपि कई रोग दूर होते हैं, तथापि सदृश-चिकित्सा-विधानके अनुसार वे ख़तरनाक हैं और कभी-कभी उनसे रोगीकी मृत्यु भी होती देखी गयी है और सभी लोग

इन्हें अधिक भयङ्कर समझते हैं। इन ख़ौफनाक बीमारियोंसे यद्यपि कई रोग दूर होते हैं; पर ये खुद इतनी भयङ्कर होती हैं, कि इन्हें दूर करनेके लिये बड़ी सावधानीसे चिकित्सा करनेकी ज़रूरत पड़ती है; इसलिये सदृश-विधानके अनुसार किसी स्वाभाविक रोगको दूर करनेके लिये किसी दूसरे स्वाभाविक रोगपर भरोसा करना बड़ा ही कठिन है। इसका परिणाम एक तरफ़ जितना ही अनिश्चित है, दूसरी तरफ़ उतना ही ख़ौफ़नाक है। चेचक, बोदरी और खुजलीके साथ कुछ थोड़ेसे इने-गिने रोगोंका सादृश्य है, इसीलिये सदृश-विधानके अनुसार प्राकृतिक रोगोंके द्वारा बहुत ही कम रोग दूर हो सकते हैं। साथ ही इनका परिणाम अनिश्चित और विपज्जनक भी है! साथही ओषधीकी मात्रापर हमारा जितना अधिकार है, उतना स्वाभाविक रोगोंपर नहीं है; इसीलिये उन स्वाभाविक रोगोंको पूर्ण रूपसे परिस्फुट होने देना पड़ता है और अन्तमें उन रोगोंको दूर करनेके लिये फिर चिकित्सा करनेकी आवश्यकता पड़ती है। यह सब होनेपर भी प्रकृतिके इसी उदाहरण—इसी नियम—द्वारा हमें वास्तविक या सदृश-चिकित्सा-विधानका ज्ञान (Therapeutic Law) प्राप्त होता है।—इसीसे हम जान सकते हैं, कि "केवल मात्र सदृश-लक्षणोंको उत्पन्न करके ही हम रोगको समूल और स्थायी रूपसे दूर कर सकते हैं।"

(५१)

प्रत्येक बुद्धिमान् और ज्ञानवान् व्यक्तिके लिये उपर्युक्त

उदाहरण ही सदृश-चिकित्सा-विधानको समझनेके लिये यथेष्ट हैं। फिर यह भी देखने और विचारने योग्य है, कि प्रकृति नित्य हमारा मंगल करते हुए हमारे लिये कितनी ही सुविधाएँ कर देती है। प्रकृतिने सैकड़ों, हज़ारों तरहकी भेषज वस्तुएँ पृथ्वीपर हमारे चारों तरफ़ हमारी सुविधाके लिये बिखेर रखी है। प्रकृतिने हमारी सुविधाके लिये जिन ओषधियोंको उत्पन्न किया है, उनमेंसे बहुतोंमें यह शक्ति देखी जाती है, कि कितने ही जाने हुए या बेजाने हुए रोगोंमें मनुष्यके शरीरपर जो लक्षण दिखाई देते हैं, वैसे ही लक्षण वे उत्पन्न कर सकती हैं। ये ओषधियाँ जब अस्वस्थ्य शरीरवाले मनुष्यकी जीवनी-शक्तिपर अपनी-अपनी शक्तिद्वारा सदृश-लक्षणोंको उत्पन्न करती हैं, तब स्वाभाविक रोग आप-ही-आप दूर हो जाते हैं और ओषधी-जनित रोग भी आप-ही-आप हट जाते हैं।—उनके लिये किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं करनी पड़ती; परन्तु यदि कोई रोग किसी दूसरे प्राकृतिक या स्वाभाविक रोग द्वारा दूर किया जाता है, तब उसे दूर करनेके लिये भी चिकित्सा करनी पड़ती है। ओषधी-जनित रोगको दूर करनेके लिये फिर चिकित्सा करनेकी ज़रूरत नहीं पड़ती, इसका प्रधान कारण यह है, कि चिकित्सक उन ओषधिओंको यथोचित परिमाण और मात्रामें दे सकते हैं— अर्थात् जितने परिमाणमें ओषधी देनेसे काम हो सकता है, उतने ही परिमाणमें वे ओषधी दे सकते हैं। इसीसे चिकित्सक अपनी चिकित्सामें सफलता प्राप्त करते हैं। बहुत दिनोंकी

पुरानी बीमारी दूर करनेके लिये भी ऐसी बीमारी उत्पन्न करनी नहीं पड़ती, कि उस नयी बीमारीके लिये फिरसे चिकित्सा करनी पड़े। वास्तवमें इस चिकित्सा-प्रणालीके द्वारा सब प्रकारकी बीमारियाँ आसानीसे दूर हो जाती हैं।

(५२)

सूर्य-प्रकाशके समान प्रत्यक्ष और स्पष्ट उदाहरणोंको देख कर कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य प्राचीन या साधारण चिकित्सा प्रणालीके अनुसार चिकित्सा करना नहीं चाहेगा। प्राचीन चिकित्सा-प्रणालीके द्वारा रोगीके उन अङ्गोंपर कोई भी क्रिया नहीं होती, जो रोगसे आक्रान्त होते हैं। पुरानी प्रथाके अनुसार विरेचक या वमन-कारक (दस्त या कय लानेवाली) ओषधियाँ दी जाती हैं। शरीरके भीतरकी पीड़ा दूर करनेके लिये ब्लिष्टर (Blister. प्रलेप) लगाया जाता है। लेकिन ओषधियोंके एक साथ मिलनेपर कैसा फल होता है, इसकी परीक्षा किये बिना ही कई ओषधियाँ एक ही साथ अधिक मात्रामें देकर एक ख़ौफ़नाक बीमारी पैदा कर दी जाती है। इस प्रकारकी चिकित्साके द्वारा कभी मूल रोग दूर नहीं होता है, बल्कि रोगीकी स्वाभाविक शक्तियोंका भी प्रचुर ह्रास हो जाता है। ऊपर लिखे हुए प्राकृतिक उदाहरणोंसे हमें जो बातें मालूम होती हैं, ओषधी-जनित रोगोंसे भी हम वैसा ही परिणाम होते देखते हैं। अर्थात् (I.) में जो उदाहरण दिये गये हैं, उनके

अनुसार पहला रोग यदि अधिक शक्तिशाली होता है, तो पीछेसे होनेवाले कम शक्तिशाली कृत्रिम (ओषधी-जनित) रोगका उसपर कुछ भी असर नहीं पड़ता। इसीलिये असदृश-विधानके अनुसार दी जानेवाली ओषधीसे अधिक शक्तिशाली रोग बहुत दिनोंतक निरन्तर चिकित्सा करनेपर भी दूर नहीं होता। उलटा रोगी और भी कमज़ोर होता जाता है। (II.) में दिये गये प्राकृतिक उदाहरणोंके अनुसार देखा गया है, कि पहला मूल रोग यदि पीछेसे होनेवाले कृत्रिम (ओषधी-जनित) रोगकी अपेक्षा दुर्बल होता है, तो कृत्रिम रोग ही पहले अपनी क्रिया करता है और पहले रोगको कुछ समयके लिये दबा देता है और उसकी क्रियाओंके समाप्त होनेपर पहला रोग फिर फूट निकलता है। (III.) में दिये गये प्राकृतिक उदाहरणोंके अनुसार देखा गया है, कि बहुत दिनोंकी पुरानी बीमारीको हटानेके लिये अगर बहुत अधिक मात्रामें असदृश लक्षण-विशिष्ट ओषधी दी जाती है, तो वह पहले रोगको आराम करनेके बदले एक और कृत्रिम (ओषधी-जनित) रोग उत्पन्न कर देती है। बहुत दिनोंतक इन बातोंको देखते-देखते हम लोगोंको मालूम हुआ है, कि इस प्रकारकी चिकित्साके द्वारा रोगीका रोग और भी भयङ्कर और असाध्य बना दिया जाता है।

(५३)

केवलमात्र सदृश-चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार चिकित्सा करनेपर ही रोगीका रोग आसानीसे व जड़से विनष्ट होता है।

बहुत दिनोंके अनुभव, अनुशीलन और अभिज्ञतासे हम जिस सिद्धान्तपर पहुँचे हैं, वह यही है कि केवल सदृश-चिकित्सा-विधानके द्वारा ही कोई रोग निश्चित और स्थायी रूपसे और जल्दी-जल्दी दूर हो सकता है, यह सिद्धान्त प्रकृतिके अचल, अटल और अपरिवर्तनशील नियमोंपर अवलम्बित है।

(५४)

किसी रोगकी चिकित्साके लिये जो तीन प्रणालियाँ देखी जाती हैं, (सदृश, असदृश और विपरीत) उनमें केवल सदृश-प्रणालीही रोगको आसानीसे, बिना कोई कष्ट पहुँचाये, निश्चित रूपसे और सदाके लिये दूर कर सकती है। यह प्रणाली शरीरके भिन्न-भिन्न अंशोंपर किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं करती। दो निर्दिष्ट बिन्दुओंके बीचमें जिस प्रकार केवल एकही सरल-रेखा खींची जा सकती है, उसी प्रकार मनुष्यकी शक्तिके अधीन रोग दूर करनेके लिये अगर कोई सरल और निश्चित उपाय है, तो वह यही सदृश-चिकित्सा-विधान ही है।—इसके सिवा दूसरा कोई उपाय हो ही नहीं सकता।

(५५)

दूसरी चिकित्सा-प्रणाली अर्थात् असदृश-चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार खासकर शरीरके स्वस्थ और सबल अङ्गोंपर ओषधोंकी क्रिया उत्पन्न करके रोग दूर करनेकी चेष्टा की जाती है।

यही प्रणाली बहुत दिनोंसे चली आती है। मैंने (हैनिमैन्‌ने) इस चिकित्साके विषयमें पहले ही अपना मत विस्तृत रूपसे प्रकट कर दिया है। अब इस विषयमें और कुछ कहनेकी मैं आवश्यकता नहीं समझता।

(५६)

तीसरी प्रणालीको विपरीत चिकित्सा-प्रणाली या ऐण्टी-पैथी (Antipathy.) कहते हैं। अबतक पुराने ढंगसे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सकगण इसी प्रणालीके अनुसार रोगीको थोड़े समयके लिये आराम करके और उनके मनमें रोग दूर हो जानेका विश्वास जमा करके उन्हें भूल-भुलैयामें डाले रखते चले आते हैं। जो बीमारियाँ शीघ्र दूर नहीं होतीं, उनमें इस चिकित्साके द्वारा कितनी हानि होती है, यह भी वे दिखा देते हैं। केवल इसी मौकेपर प्राचीन मतानुयायी चिकित्सकगण रोगीके रोग-ग्रस्त अङ्गोंपर कुछ-कुछ ओषधियोंकी क्रिया उत्पन्न किया करते हैं। पर सो भी कैसे—किस राहसे चलकर—करते हैं? उस रास्तेसे चलकर, जिससे रोग निश्चितरूपसे दूर हो सकता है, उसके विरुद्धवाले राहसे चलकर। पुरानी बीमारीको दूर करनेके लिये अगर रोगीको धोकेकी टट्टीमें—भूल-भुलैयामें—थोड़ी देरके लिये रखना नहीं चाहते, तो ऐसी राहसे चलकर चिकित्सा कभी नहीं करते।

(५७)

इस प्रकारकी विपरीत चिकित्सा-प्रणालीके अनुसार किसी

रोगीके रोग-लक्षणोंमें जो लक्षण सबसे अधिक तकलीफ़ देता है, ठीक उसीके विपरीत लक्षण उत्पन्न करनेवाली ओषधी दी जाती है। इस प्रकारकी ओषधियोंके द्वारा थोड़ी देरके लिये निर्दिष्ट रोगका निवारण अवश्य होता है, यह जानकर पन्द्रहवीं शताब्दीके चिकित्सकगण इन ओषधियोंकी बड़ी तारीफ़ करते थे। पुरानी प्रणालीके अनुयायी चिकित्सकगण आज भी इन ओषधियोंको बहुत पसन्द करते और इनका व्यवहार भी अकसर करते हैं। वे लोग सब तरहकी पीड़ाओं (दर्द) के लिये अफीमका व्यवहार करते हैं। इसका कारण यह है, कि अफीम (अहिफेन) खिला देनेसे रोगीकी पीड़ा अनुभव करनेवाली नसें अवसन्न या अनुभव-शक्ति-हीन हो जाती हैं और इसीलिये उसे कुछ समयके लिये कष्टोंका निवारणसा मालूम होता है। अफीममें अँतड़ियोंकी शक्तिको क्षीण करनेकी एक शक्ति है। इसीलिये वे लोग आँवकी बीमारीको दूर करनेके लिये बहुत अधिक मात्रामें अफीम देते हैं। अफीम नशा लाकर दीमाग़की नसोंको शक्ति-हीन बना देती है और मनुष्यको अज्ञान कर देती है। इसीलिये अनिद्रारोगमें (नींद न आनेकी बीमारीमें) ये लोग रोगीको बहुत अधिक मात्रामें अफीम खिलाकर उसे बेहोश कर डालते हैं। किसीको कब्जियतकी शिकायत (कोष्ठ-बद्धता) होनेपर वे रोगीको विरेचक (दस्त लानेवाली) ओषधियाँ देते हैं। किसीके शरीरका कोई अङ्ग जल जानेपर उसे जलमें डुबाकर रखते हैं। इससे थोड़ी देरतकके लिये जलन

कुछ कम ज़रूर होती है। किसी रोगीको बहुत ठण्ड या जाड़ा मालूम होनेपर (हाट-बाथ Hot Bath) गरम पानीसे स्नान करानेकी व्यवस्था करते हैं। जिनका शरीर बहुत दुर्बल हो जाता है, उनको ताक़तके लिये शराब पिलाते हैं। इससे थोड़ी देरके लिये शरीरमें बल ज़रूर आजाता है। ये चिकित्सा तो करते हैं, रोगको दूर करनेके लिये; परन्तु ऐसी बहुत ही कम ओषधियाँ हैं, जिनसे विपरीत लक्षण उत्पन्न करके रोग दूर हो सकते हैं।

(५८)

वास्तवमें यह चिकित्सा प्रणाली सब प्रणालियोंकी अपेक्षा बुरी है। रोगके केवल एक छोटेसे हिस्सेपर दृष्टि रखकर यह चिकित्सा की जाती है। इसके द्वारा रोगके समस्त लक्षणोंको दूर करना बिल्कुल असम्भव है। साथही हमलोगोंने यह भी देखा है, कि पुरानी बीमारीमें इस तरहकी चिकित्साका फल कभी स्थायी नहीं होता, बल्कि मूलरोग और भी बढ़ जाता है। यह बात एक बार नहीं, हर बार और हमेशा देखनेमें आती है। ध्यानपूर्वक रोगीकी अवस्थाओं और लक्षणोंको देखनेवाले चिकित्सकोंको इस प्रकारकी चिकित्सासे कुछ समयके लिये रोग दूर होनेके बाद फिर वह बढ़ता दिखाई देता है। जब इस प्रकार रोग फिर बढ़ जाता है, तब चिकित्सक लोग रोगीको यह कहकर तसल्ली देना चाहते हैं, कि रोग बड़ाही भयङ्कर है या एक और नया रोग आगया है। वे लोग यह बात माननेको

इससे पहले तो शरीरमें बल आता सा मालूम होता है ; परन्तु पीछे और भी अधिक शिथिलता आ जाती है। कडुए पदार्थ (जैसे चिरायता आदि) या गरमी उत्पन्न करनेवाली दवा तथा सेंक-तापके द्वारा दुर्बल पाकस्थलीमें गरमी या ताक़त पैदा की जाती है, पर थोड़ीही देर बाद वह और भी कमज़ोर हो जाती है। बहुत दिनोंसे शरीरकी ऊष्णता (गरमी) घट जानेवाले रोगीको गरमीसे चिकित्सा करनेपर पहले कुछ फायदा ज़रूर मालूम होता है, पर थोड़ी ही देरके बाद उसका शरीर और भी ठंढा हो जाता है। शरीरका कोई अङ्ग जल जानेपर उसपर ठण्ढा जल देनेसे पहले जलन कम पड़ जाती है, पर पीछे बहुत अधिक जलन होती है और क्रमशः बढ़ती जाती है। सर्दी या जुकामके कारण जिसकी नाक सुर-सुराती और छींक-पर-छींक आती है, उसकी सर्दी सुखा देनेसे पहले तो उसकी नाक सूख जाती है और छींकोंका आना बन्द हो जाता है, पर थोड़ी ही देरके बाद उसकी नाक फिर भर जाती और सर्दी जकड़ जाती है। लकवेकी बीमारीमें बिजलीसे चिकित्सा करनेपर पहले तो अङ्ग-अङ्गमें ताक़त आ जाती है ; पर पीछे लकवा और भी भयङ्कर रूप धारण कर लेता है। सिरकी रगों और नसोंमें अधिक ख़ून दौड़नेकी बीमारीमें खून निकालनेकी व्यवस्था की जाती है। इससे पहले तो सिरका दर्द कुछ कम पड़ जाता है, पर पीछे दर्द बहुत बढ़ आता है। साधारण चिकित्सकगण टाईफस आदि रोगोंमें शारीरिक और मानसिक दुर्बलता दूर

करनेके लिये बहुत अधिक मात्रामें वलिरियन (Valerion) सेवन कराते हैं ; क्योंकि उसमें स्नायु-तन्तुओंकी ताकत बढ़ानेकी यथेष्ट शक्ति है। परन्तु वे यह नहीं जानते, कि पहले पहल तो यह ताकत बढ़ाती है, पर पीछे स्नायुओंको और भी दुर्बल कर देती है और उनकी दुर्बलता तथा अशान्तताको बढ़ा देती है—अर्थात् शारीरिक और मानसिक वृत्तियोंको लकवा मार जाता है। इसके बादही मृत्यु होती है। वे लोग यह नहीं जानते, कि इस ओषधीके उलटी क्रिया करनेसे ही मृत्यु इतनी निकट आ जाती है। ऐसे चिकित्सकगण यह कहकर बड़े प्रसन्न होते हैं, कि हम लोग डिजिटेलिस (Digitalis.) की सहायतासे तेज़ चलनेवाली नब्ज़को कई घण्टोंतक धीरे-धीरे चला सकते और उसे मज़बूत कर सकते हैं, पर वे लोग यह नहीं जानते, कि इस दवासे केवल कई घण्टोंके बाद नाड़ीकी गति पूर्वापेक्षा बहुत तेज़ हो जाती है। इतनी तेज़ हो जाती है, कि उसकी चाल गिनी नहीं जा सकती है। इसका फल नींदका न आना और भूखका मालूम न होना और सब अंगोंमें दुर्बलताका आ जाना है। साथ ही रोगीकी मौत नज़दीक आ जाती है। कभी-कभी यह देखा गया है, कि ऐसे रोगीकी अगर मौत नहीं होती है, तो वह पागल हो जाता है। उनकी भ्रान्तिपूर्ण धारणाके कारण उनको इस विपरीत चिकित्साका भयङ्कर फल दिखाई नहीं देता है ; पर पूर्ण अभिज्ञता रखनेवाले चिकित्सक यह बात आसानीसे समझ जाते हैं।

(६०)

साधारण चिकित्सक लोग जब विपरीत ओषधी देनेसे पहले लाभ होता देखते हैं, तब वे समझते हैं, कि ओषधीकी मात्रा बढ़ानेसे और भी अधिक लाभ होगा। इन विपरीत दवाओंसे पहले कई दिनोंतक तो फ़ायदा होता दिखाई देता है; पर कुछ ही दिनोंके बाद ऐसा समय आ पहुँचता है, जब ओषधीको मात्रा बहुत अधिक होनेके कारण रोगीके जीवन-मरणका सवाल आ खड़ा होता है। पुरानी बीमारियाँ विपरीत चिकित्साके द्वारा कभी दूर नहीं हो सकती हैं।

(६१)

इस प्रकारकी विपरीत चिकित्सा करनेवाले चिकित्सक अपनी इस कुचिकित्साके इन भयङ्कर परिणामोंको देख-देखकर यदि चिकित्साका वास्तविक तथ्य ढूँढ़ना चाहते और अपनी चिकित्साके विपरीत क्रिया करनेवाली प्रणालीका पता लगाते तो संसारका इतना बड़ा अनिष्ट नहीं होता और वे समझ जाते, कि वास्तवमें सद्रुश चिकित्सा-विधानके द्वारा ही रोग दूर हो सकते हैं। विपरीत चिकित्सासे पहले पहल तो रोग कुछ घट या दब जाता है, पर थोड़ी ही देर बाद वह और भी भयङ्कर रूप धारण कर फिर निकल आता है। सद्रुश चिकित्सासे ठीक इसके विपरीत परिणाम होता है। इसमें ओषधी कम दी जाती है और उसमें अधिक। इसमें रोग पहले पहल कुछ बढ़ता हुआ मालूम होता है; पर पीछे रोग समूल विनष्ट हो जाता है। विपरीत

चिकित्साके द्वारा वे लोग कभी किसी रोगको—ख़ासकर किसी पुराने रोगको—दूर करनेमें सफल नहीं हुए हैं। अगर सयोगवश कहीं उनके प्रेसक्रिप्शन्में (नुस्ख़ेमें) ऐसी एक दवा पड़ गयी, जो रोग-लक्षणोंके सदृश ही लक्षण उत्पन्न करती हो, तो रोग दूर होनेकी बहुत सम्भावना रहती है। यहाँ तक कि प्रकृति स्वयं यदि किसीके शरीरमें दो सदृश-लक्षण-विशिष्ट रोग उत्पन्न करती है, तब पहला रोग आपही दूर हो जाता है। यद्यपि सैकड़ों वर्षोंसे ये सब बातें देखते चले आते हैं, पर वे प्रकृतिके इस अटल नियमसे शिक्षा ग्रहण कर संसारका कल्याण नहीं कर सके हैं।

(६२)

विपरीत चिकित्साका फल ऐसा भयङ्कर और सदृश चिकित्साका फल ऐसा सन्तोष-जनक क्यों होता है, यह बात नीचे लिखे उदाहरणोंसे साफ़-साफ़ मालूम हो जायेगी। परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है, कि इतने उदाहरणों और प्रमाणोंके मौजूद रहनेपर भी किसीको अबतक यह प्रणाली नहीं सूझी—किसीका भी ख़याल इसकी ओर नहीं गया!

(६३)

जिस पदार्थमें जीवनी-शक्तिपर क्रिया करनेकी शक्ति है और जो ओषधी जीवनी-शक्तिको व्याधिग्रस्त कर सकती है, वह स्वस्थ शरीरवाले मनुष्यकी जीवनी-शक्तिपर परिवर्त्तन भी ला सकती है। इसको ओषधीकी प्राथमिक क्रिया (Primary

action) कहते हैं। यद्यपि ओषधी और जीवनी-शक्ति दोनोंको सम्मिलित क्रियासे यह काम होता है, तौभी इसे ओषधी-की ही क्रिया कह सकते हैं। ओषधीकी इस क्रियाको दूर करनेके लिये जीवनी-शक्ति अपने बलका प्रयोग करती है। यह बल जीवनी-शक्तिका स्वाभाविक और जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे अप्रधान क्रिया या गौण क्रिया (Secondary action) कहते हैं।

(६४)

ओषधी जब शरीरपर अपनी क्रिया करती है, उस समय जीवनी-शक्ति पराधीन होकरके ओषधीके द्वारा होनेवाले लक्षणोंको प्रकट करने लगती है। ओषधीकी क्रिया समाप्त होनेपर वह अपनी क्रिया आरम्भ करती है। जब विपरीत लक्षण उत्पन्न करनेवाली ओषधी दी जाती है, और जब उसकी क्रिया समाप्त हो जाती है, तब जीवनी-शक्ति अपनी स्वतन्त्र शक्तिके द्वारा उस ओषधीके प्राथमिक लक्षणोंके विपरीत नये लक्षण उत्पन्न कर देती है। ये अप्रधान लक्षण मूलरोग लक्षणोंके सदृश होनेके कारण मूलरोग और भी भयङ्कर रूप धारण कर लेता है (क)।

परन्तु जब सदृश-लक्षण-युक्त ओषधी दी जाती है, तब प्राथमिक क्रियाके लक्षण रोग-लक्षणोंके सदृश होनेके कारण मूल-रोग क्षणभरके लिये बढ़ता हुआ मालूम होता है और अन्तमें जीवनी-शक्तिकी क्रिया रोग-लक्षणोंसे बलवती और असदृश

होनेके कारण रोगको समूल नष्ट कर डालती है और रोगीको पूर्ण स्वस्थावस्थामें ला देती है (ख)।

(६५)

(क) इस श्रेणीके उदाहरण प्रायः सभी लोग जानते हैं। गरम पानीमें हाथ डुबाये रखनेसे वह गरम हो जाता है; (प्राथमिक क्रिया) पर थोड़ी देर बाद जब हाथका पानी सूख जाता है, तब परीक्षा लेकरके देखा जा सकता है, कि वह हाथ दूसरे हाथकी अपेक्षा अधिक ठंढा हो जाता है (गौण क्रिया)। कोई आदमी जब बहुत ज़ियादः शारीरिक परिश्रम, व्यायाम या कसरत करता है, तब उसका शरीर गरम हो जाता है (प्राथमिक क्रिया) लेकिन थोड़ी ही देर बाद उसका शरीर पहलेकी अपेक्षा और भी अधिक ठण्डा हो जाता है—कभी-कभी तो उसे कँपकँपी भी आजाती है (गौण क्रिया)। कल जिस आदमीके शरीरमें बहुत ज़ियादः शराब पीनेसे गरमी आ गयी थी (प्राथमिक क्रिया) आज उसकी साँस ठण्डी चलती दिखाई देती है (गौण क्रिया)। एक हाथ अगर ठण्डे जलमें डुबाकर रखा जाये, तो वह दूसरे हाथकी अपेक्षा अधिक ठण्डा हो जाता है और उसपर सफ़ेदी आ जाती है (प्राथमिक क्रिया) परन्तु थोड़ी ही देर बाद वह हाथ दूसरे हाथकी अपेक्षा अधिक गरम हो नहीं हो जाता, बल्कि कभी-कभी उसमें थोड़ी-थोड़ी जलन भी मालूम होने लगती है। (गौण क्रिया)। काफी (कहवा) के सेवनसे पहले तो नींदका आना बहुत कुछ बन्द सा हो जाता है (प्राथमिक क्रिया); परन्तु

पीछे गहरी नींदकी अवस्था आ उपस्थित होती है (गौण क्रिया)। इसीलिये विपरीत चिकित्सावाले बहुत नींद आनेकी बीमारी-वालोंको कहवा पिलाते हैं। अफ़ीमके सेवनसे पहली रातको तो बहुत नींद आती है, प्राथमिक क्रिया ; परन्तु पीछे दूसरे दिन रातको नींद नहीं आती और बहुत तकलीफ़ होती है। अफ़ीमके सेवनसे पहले कोष्ठ-बद्धता (कब्जियत) होती है (प्राथमिक क्रिया) ; पर पीछे बार-बार दस्त आने लगते हैं (गौण क्रिया)। तेज़ जुलाब लेनेसे दस्त आते हैं (प्राथमिक क्रिया) ; पर पीछे कुछ दिनोंके लिये कोष्ठ-बद्धता उत्पन्न होती है (गौणक्रिया)। इसी तरह बहुत अधिक मात्रामें कोई ओषधी दे कर परिवर्तन करनेसे यदि उसके विपरीत कोई रोग लक्षण है, तो ओषधीकी गौण क्रियासे उसकी प्राथमिक क्रियाओंके विपरीत लक्षण प्रकट होते हैं।

(६६)

सदृश चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार ओषधी इतनी कम मात्रामें दी जाती है, कि उसकी प्राथमिक क्रिया इतनी सूक्ष्म होती है, कि अनुभवी निरीक्षकके सिवा वह और किसीको दिखाई नहीं देती ; उस क्रियाके समाप्त हो जानेके बाद उसकी गौण क्रिया स्पष्ट दिखाई नहीं देती और उसके परिणामको हटाकर फिरसे स्वस्थ और स्वाभाविक अवस्था लानेके लिये जीवनी-शक्तिको विपरीत लक्षण उत्पन्न करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। उसकी प्रतिक्रियासे रोगके सब लक्षण धीरे-धीरे

हटते जाते और थोड़ोही देरमें स्वाभाविक स्वस्थावस्था लौट आती है।

(६७)

प्रकृतिकी शक्तियोंको ग़ौरसे देखने-भालने और बहुत दिनोंतक चिकित्सा सम्बन्धी अनुभवसे यही निश्चय होता है, कि ये अचल सिद्धान्त जिस प्रकार सदृश चिकित्सा-प्रणालीकी उपकारिता प्रकट करते हैं, उसी प्रकार विपरीत चिकित्साके भयङ्कर और हानिकर परिणामोंको भी प्रकट कर देते हैं।

(६८)

होमियोपैथिक चिकित्सामें हम लोगोंने देखा है, कि बहुत कम मात्रामें ओषधी देनेपर भी वह सदृश लक्षणोंको उत्पन्न करके रोगके स्थानोंपर अधिकार कर लेती है और क्रमशः रोगको दूर कर देती है। यह बात ठीक है, कि इस चिकित्सासे रोग दूर हो जानेपर कुछ समय तक ओषधी-जनित रोग शरीरमें अत्यल्प मात्रामें वर्त्तमान रहता है; लेकिन ओषधीकी मात्रा बहुत ही कम होनेके कारण तकलीफ़ बहुत ही कम समयके लिये ठहरती है; साथ ही वह इतनी कम होती है, कि जीवनी-शक्ति अपने बलसे आसानीसे उसे निकाल दे सकती है और प्रायः वह आप-ही-आप रफ़ा हो जाती है। फिर जीवनी-शक्ति रोग-मुक्त होकर स्वस्थावस्था प्राप्त करती है।

(६९)

परन्तु विपरीत चिकित्साका परिणाम सदृश-चिकित्साके

परिणामके उल्टा होता है! एलोप्रैथिक या असदृश-चिकित्सामें रोगके लक्षणोंके साथ ओषधोंके द्वारा उत्पन्न होनेवाले लक्षणोंका कोई सादृश्य नहीं रहता है; पर विपरीत-चिकित्सामें वैसा नहीं होता है; बल्कि रोग-लक्षणोंके विपरीत लक्षण उत्पन्न करनेकी चेष्टा की जाती है (जैसे, नयी पीड़ामें अफ़ीम देकर रोगीको बेहोश करके रखा जाता है) और इसका गौण फल यह होता है, कि रोग और भी बढ़ जाता है; क्योंकि विपरीत चिकित्साके द्वारा रोग स्थायी रूपसे दूर नहीं किया जा सकता। परन्तु इस विपरीत चिकित्सा-प्रणालीमें एक विशेषता ज़रूर है, कि दवा देते ही मालूम होता है, कि रोग मानों किसी मन्त्र-बलसे दूर हो गया—रोगीकी सब तकलीफ़ें पहले पहल बिल्कुल रफ़ा हो जाती हैं। इसका कारण यही है, कि मूल रोग जिन लक्षणोंको उत्पन्न करता है, ओषधी देनेसे ठीक उनके विपरीत लक्षण प्रकट होते हैं। इन दोनोंकी खींचातानीमें जो अवस्था शरीरकी होती है, उसमें मालूम होता है, कि मानों सब रोग जड़से दूर हो गया; क्योंकि अकसर दो विपरीत लक्षण-विशिष्ठ रोगोंके एकही समय उत्पन्न होनेसे दोनोंमें किसीका अनुभव नहीं किया जा सकता है। * पीड़ा कम करनेके लिये

---

* जैसे, एक रस्सीको दोनों छोर पकड़ कर खींचनेसे जब-तक वह टूट नहीं जाती, तबतक मालूम होता है, कि वह एकही जगह खड़ी है।

अफ़ीम देनेसे भी यही परिणाम दिखाई देता है। अफीमकी क्रियाओंसे रोगीको नशा या पीड़ा दोनोंमें किसीका अनुभव नहीं होता। जिस तरह होमियोपैथिक चिकित्साके अनुसार दी जानेवाली ओषधी शरीरमें प्रवेश कर एक अधिक बलशाली रोग उत्पन्न करके मूल रोगके स्थानोका अधिकार कर लेती और पीछे मूल रोगको जड़से दूर कर देती है—उस प्रकार विपरीत-चिकित्सामें कभी नहीं होता।—वह जीवनी-शक्तिको दो विपरीत लक्षणोंवाले रोगोंकी खींचातानीमें डाल देती है और मालूम होता है, कि जीवनी-शक्ति स्वस्थावस्थामें है। इस विपरीत-चिकित्साके द्वारा रोग कभी समूल विनष्ट नहीं हो सकता। बल्कि जीवनी-शक्ति ओषधोकी क्रियाओंके विरुद्ध (गौण क्रिया) लक्षण उत्पन्न करनेको वाध्य होती है। अर्थात् रोगके लक्षण और भी भयङ्कर आकार धारण कर लेते हैं। इस चिकित्सासे मूल रोग पहले पहल जितना दब जाता है, पीछे उतना ही अधिक बढ़ जाता है। अतएव इस प्रणालीके अनुसार जितनी अधिक अफ़ीम दी जाती है, उसकी गौण क्रियाएँ उतना ही अधिक रोगको बढ़ा देती हैं।

(७०)

ऊपर कही गयी बातोंसे हम जिस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं या उन बातोंसे जो सिद्धान्त निकलता है वह नीचे दिया जाता है :—